‘ ‘CHHAPPAR’ AUR ‘BHED’ UPANYASON KA TULANATMAK ADHYAYAN’

A Dissertation submitted in Partial Fulfilment of the Requirement

For the Degree of Master of Philosophy in Hindi

2022

Researcher

SHASHIKANTA NAIK

19HHHL05

Supervisor

DR. BHIM SINGH

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad - 500046

Telangana

India

‘ ‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन’

हैदराबाद विश्वविद्यालय की एम.फिल (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

2022

शोधार्थी

शशिकान्त नाएक

19HHHL05

शोध-निर्देशक

डॉ. भीम सिंह

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

तेलंगाना

भारत

DECLARATION

I SHASHIKANTA NAIK (Registration no. 19HHHL05) hereby declare that the dissertation entitled ' 'CHHAPPAR' AUR 'BHED' UPANYASON KA TULANATMAK ADHYAYAN' (' 'छप्पर' और 'भेद' उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन') submitted by me under the guidance and supervision of Dr. BHIM SINGH is a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my dissertation can be deposited in shodhganga/Inflibnet.

Shashikanta Naik

Signature of Student

SHASHIKANTA NAIK

Regd. No. 19HHHL05

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled ' 'CHHAPPAR' AUR 'BHED' UPANYASON KA TULANATMAK ADHYAYAN' (' 'छप्पर' और 'भेद' उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन') submittedby SHASHIKANTA NAIK bearing Regd. No. 19HHHL05 in partial fulfilment of the requirements for the award of MASTER OF PHILOSOPHY in HINDI is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

As for as I know, This dissertation is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Signature of

Supervisor

Dr. BHIM SINGH

Head of the Department

Prof. GAJENDRA KUMAR PATHAK

Dean of the School

Prof. V. KRISHNA

‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यासों का तुलनात्मक-अध्ययन

अनुक्रमणिका पृष्ठ संख्या

भूमिका पृ.सं. i - iv

प्रथम अध्याय - ‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यासों का कथ्यगत अध्ययन पृ.सं. 01 – 43

1.1 ‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यासों की कथावस्तु

1.1.1. ‘छप्पर’ उपन्यास की कथावस्तु

1.1.2. ‘भेद’ उपन्यास की कथावस्तु

1.2 विवेच्य उपन्यासों की अंतर्वस्तु का तुलनात्मक-अध्ययन

1.2.1 ‘छप्पर’ उपन्यास की अंतर्वस्तु

1.2.2 ‘भेद’ उपन्यास की अंतर्वस्तु

द्वितीय अध्याय - 'छप्पर' और 'भेद' उपन्यासों के पात्रों का तुलनात्मक-अध्ययन पृ.सं. 44 -93

2.1 भौगोलिक-आधार पर

2.1.1 महानगरीय-पात्र

2.1.2 कस्बाई-पात्र

2.1.3 ग्रामीण-पात्र

2.2 शिक्षा और साक्षरता के आधार पर

2.2.1 शिक्षित-पात्र

2.2.2 अर्द्धशिक्षित-पात्र

2.2.3 अशिक्षित

2.3 लिंगगत और अवस्था विशेष के आधार पर

2.3.1 स्त्री-पात्र

2.3.2 पुरुष-पात्र

2.3.3 बाल, किशोर, युवा और वृद्ध-पात्र

तृतीय अध्याय- विवेच्य उपन्यासों में रचनाकारों की लेखन का उद्देश्यपरक अध्ययन
पृ.सं. 94 – 125

3.1 सामाजिक समस्या को इंगित करना
3.2 समाज व्यवस्था में बदलाव के आकांक्षी
3.3 राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी
3.4 शैक्षणिक जगत में परिवर्तन के आकांक्षी
3.5 भाषा-शैली

उपसंहार पृ.सं. 126 – 128

संदर्भ ग्रंथ सूची पृ.स. 129 – 130

आधार ग्रंथ पृ.सं. 129 – 130

सहायक ग्रंथ पृ.स. 130 – 130

परिशिष्ट- पृ.स. 131 – 138

1. रचनाकारों की जीवनी परिचय
2. शोध-आलेख

प्रस्तावना

'तुलनात्मक-साहित्य' वह विद्या शाखा है, जिसमें दो या दो से अधिक भिन्न भाषाई, राष्ट्रीय या सांस्कृतिक समूहों के साहित्य का अध्ययन किया जाता है। आज हर विकासशील देश में साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन- अध्यापन हो रहा है। विश्व में जितने भी देश हैं प्रायः सभी देशों में कई सारे भाषाएं हैं और उन सभी भाषाओं में रचनाकार अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को प्रकाशित करता है या करता हुआ आ रहा है। विश्व में कई सारे भाषाएँ होने के कारण साहित्य भी अनेक भाषाओं में लिखा गया है। भले ही उन सभी साहित्य की अभिव्यकि एक जैसी है या अलग-अलग है उसकी सही जानकारी तब तक नहीं हो सकती जब तक उस साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन नहीं होता। अतः एक-दूसरे भाषा में लिखे गये साहित्य की अभिव्यक्ति को जानने के लिए आज तुलनात्मक-अध्ययन की आवश्यकता है।

वर्तमान युग में समूचे विश्व की जनता में एक-दूसरे की भाषा के समकालीन साहित्य को पढ़ने एवं उस साहित्य की अभिव्यक्तियों तथा संवेदनशीलता आदि को जानने के प्रति विद्वानों में जिज्ञासा हो रही है। साहित्य में मनुष्य अपनी आत्मानुभूति को शब्द के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इस सन्दर्भ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर अपने एक भाषण में कहते हैं "यदि हमें उस मनुष्य को समझाना है जिसकी अभिव्यक्ति उसके कर्मों, प्रेरणाओं तथा उद्देश्यों में होती है तो संपूर्ण इतिहास के माध्यम से हमें उसके अभिप्रायों से परिचित होना होता है।" इसी कारण उन्होंने तुलनात्मक-साहित्य के लिए 'विश्वसाहित्य' शब्द का प्रयोग किया था। आज 'विश्व-साहित्य मनुष्य में, मनुष्यता की खोज कर रही है। इसी कारण आज विश्व भर में तुलनात्मक-अध्ययन की संभावनाएं बढ़ रही है और एक-दूसरे भाषा में वर्णित रचना के कथ्य के साथ उस भाषा की भाव, संवेदना, अभिव्यक्ति आदि को जानने के लिए भी विद्वानों में जिज्ञासा का भाव दिखाई दे रही है। रवीन्द्रनाथ के अनुसार 'तुलनात्मक-साहित्य विश्व की विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य जो एक इकाई न होकर एक सम्पूर्ण इकाई है जिसमें असंख्य ऐतिहासिक तथा आध्यात्मिक अंतःसंबंधों को लेकर लिखा जाता है। इनकी खोज और अध्ययन करना ही विश्व साहित्य या तुलनात्मक साहित्य का कार्य है। अतः तुलनात्मक-साहित्य आज एक पद्धति न होकर एक स्वतंत्र ज्ञानानुशासन के रूप में स्थापित है। तुलनात्मक साहित्य की विशिष्टता यह रही है कि उसने स्वयं अपनी पद्धति निर्मित की है। पद्धति निर्माण के कारण ही उसे एक विशेष विद्या शाखा के रूप में सफलता प्राप्त हुई है।

भारत के लगभग सभी राज्यों मे दलितों की स्थिति एक जैसी है और उनमें शिक्षा की कमी होने के वजह से उनके समाज से जुड़े साहित्य की सृष्टि बहुत कम है। जिसके अनेक कारण देखने को मिलते हैं। पहला, दलित और आदिवासी जनसमुदाय में शिक्षा की कमी है। जिसके कारण उनमें से कवि, लेखक और रचनाकार का जन्म लेना बहुत सीमित तथा न के बराबर है। दूसरा, वर्ण-व्यवस्था श्रेष्ठता के आधार पर उन्हें मुख्य सभ्यता से हमेशा दूर रखा गया है। लेकिन आजादी के बाद भारत मे संविधान लागू होने से दलितों को शिक्षा का अधिकार मिला, जिससे उनमें चेतना पैदा हुई या जागृत हुई। शिक्षा के उपरांत दलित आदिवासी के मध्य जिन शिक्षित मध्य-वर्ग का उदय हुआ उनमें समानता, स्वतंत्रता, सम्मान और बंधुता की भावना जागृत की जिससे उन्होंने संकीर्णता को दूर करके स्वाभिमान जागृत कर सके वैसे साहित्य का सृजन किया। उसने अपने अभिव्यक्ति के लिए साहित्य का उपयोग करके सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन के विविध क्षेत्र में अपनी भागीदारी और हस्तक्षेप को बढ़ाया।

1990 के दशक के आस-पास अखिल भारतीय स्तर पर भारत में दलित आंदोलन ने दलित राजनीति को प्रभावित किया और दलित राजनीति ने दलित साहित्य को भी प्रभावित किया। इस आंदोलन से साहित्य और राजनीति के बीच एक संबंध बनता है। जिसके प्रभाव स्वरूप उस शिक्षित मध्य-वर्ग के बीच से जयप्रकाश कर्दम और अखिल नायक जैसे लेखक विभिन्न भाषाओं में आते हैं। ये लेखक एक ही भाषा-परिवार के हैं। इनके उपन्यासों में (अलग-अलग भाषाओं में) कैसे दलित-चेतना का प्रादुर्भाव होता है? एक 'छप्पर' (1994) के रूप में दूसरा 'भेद' (2010) उपन्यास के रूप में ये रचनाएँ दलितों के साथ होने वाले विभिन्न प्राथमिक मुद्दों को लेकर सामने आते हैं। जिसमें प्राथमिक समस्या जैसे शिक्षा प्राप्त करना, छुआछूत, ऊँच-नीच तथा अंधविश्वासों को दूर करना, भूमिहीन मजदूर के मुद्दे को उठाना, दलितों के बीच सामाजिक-नेतृत्व की पहचान करना, दलित युवाओं को बुद्ध, फुले, पेरियार, अंबेडकर और मार्क्स के विचार तथा चेतना से समाज को समतामूलक रुप से देखने का हिमायत करते दिखाई देता है। इसी क्रम मे दोनों उपन्यासों में दलित-जीवन के विभिन्न पहलुओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखने को कोशिश की गई है।

मेरे लघु शोध-प्रबंध का विषय है **'छप्पर' और 'भेद' उपन्यासों का तुलनात्मक-अध्ययन'**। इस लघु शोध-प्रबंध का कार्य तुलनात्मक-विधि द्वारा ही किया गया है। तुलना करते समय यह ध्यान रखा गया है कि दोनों रचनाकारों की साहित्यिक-अभिव्यक्तियाँ उनकी साहित्यिक प्रतिबद्धता न्यायोचित हो। इस लघु शोध-प्रबंध का उद्देश्य दोनों भाषाओं की संस्कृति और साहित्य में अभिव्यक्त दलित जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखाने का प्रयास किया गया है।

साथ ही हिंदी और ओड़िया दलित साहित्य के वर्तमान रूप को पाठकों के सामने लाना इस शोध का उद्देश्य रहा है। दलित, उपेक्षित वर्ग की दयनीय स्थिति तथा सवर्ण समाज में समानता के साथ जीने के लिए उनके छटपटाहट को पूरे आक्रोश के साथ दर्ज किया गया है। इन रचनाकारों की रचनाओं के माध्यम से भारत की दलित-समस्या को मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया गया है। हिंदी और ओड़िया भाषाओं के मध्य सांस्कृतिक-सबंध तथा दलित जीवन के विभिन्न पहलुओं को दिखाने में यह कार्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। उसी को देखते हुए जयप्रकाश कर्दम कृत ‘छप्पर’ और ओड़िया साहित्य के दलित रचनाकार अखिल नायक कृत ‘भेद’ उपन्यास का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावित शोध में जातिगत-समस्या, विचारधारा, दलित-चेतना, जाति की समस्या के अलावा वर्ग की समस्या को भी दिखाया गया है। इस प्रस्तावित शोध विषय को मूल रूप से अध्ययन की दृष्टि से प्रस्तावना और उपसंहार के अतिरिक्त तीन अध्याय में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम अध्याय को दो उप-अध्यायों में विभक्त कर, उपन्यासों की कथावस्तु और अंतर्वस्तु के पार्थक्य को दर्शाते हुए उसकी तुलना की गई है। दूसरे अध्याय में ‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यासों के पात्रों का तुलनात्मक-अध्ययन किया गया है। जिसके उप-अध्यायों के अंतर्गत भौगोलिक, शिक्षा और साक्षरता एवं लिंगगत और अवस्था विशेष के आधार को चुना गया है और उनके मध्य तुलना की गयी है। तीसरे अध्याय के अंतर्गत विवेच्य उपन्यासों में रचनाकारों के लेखन का उद्देश्य परक अध्ययन चार उप-अध्याय के माध्यम से किया गया है।

इस कार्य की सफलता के लिए शोध-निर्देशक डॉ. भीम सिंह सर का बहुत आभारी हूँ। इसके साथ मेरे शोध-सलाहकार समिति के सदस्य प्रो. वी. कृष्णजी और दोनों उपन्यासों के लेखक डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी और अखिल नायक जी को विशेष कृतज्ञता तथा आभार व्यक्त करता हूँ। साथ ही हैदराबाद विश्वविद्यालय का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने इस विषय पर शोध-कार्य करने की अनुमति, आवश्यक सुझाव और सहयोग प्रदान किया।

इस कार्य को सम्पूर्ण करने के लिए मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति कृतज्ञ हूँ, विशेष कर माँ बासन्ति नाएक, पिता राजकिशोर नाएक, बड़े भाई हेमन्त नाएक, बहन सुमिता नाएक, छोटे भाई दुष्मन्त और भतीजी तनुश्री के प्रति कृतज्ञ हूँ। जिन्होंने मुझे इस तरह की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्रदान किया।

मैं अपने मित्र सोनल और अमित का आभारी हूँ, साथ ही हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी शोधार्थी संदीप भाई का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य के लिए मदद की। अंत में मैं

उन सभी लेखकों, विद्वानों, मित्रों का आभार, जिनकी सहायता के बिना यह शोध-प्रबंध सम्पन्न नहीं हो पाता।

शशिकान्त नाएक

प्रथम अध्याय

‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यासों का कथ्यगत-अध्ययन

1.1 ‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यासों की कथावस्तु

1.1.1.’छप्पर’ उपन्यास की कथावस्तु

दलित साहित्य जगत के सशक्त हस्ताक्षर एवं सामाजिक विचार के व्यवहारिक चिंतक जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखा गया उपन्यास ‘छप्पर’ को दलित साहित्य का क्रांतिधर्मी दस्तावेज के रूप में देखा जा सकता है, जिसके माध्यम से समाज के सबसे वंचित वर्ग की दयनीय स्थिति की कहानी कहने की कोशिश की गयी है। इस रचना के कथानक भारतीय उप-महाद्वीप के पश्चिम उत्तर-प्रदेश के छोटे से गांव मातापुर की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। इस उपन्यास का कथा-नायक सुक्खा और रमिया का इकलौता पुत्र चन्दन है, जो गांव से शहर पढ़ने के लिए जाता है। उसके माता-पिता की इच्छा है कि वह पढ़-लिख कर कोई बड़ा अधिकारी बने। लेकिन गांव के सवर्ण समुदाय को एक दलित चमार के बेटे का शहर में जाकर लिखना-पढ़ना नहीं सुहाता वे इसको अपना अपमान समझते हैं। चन्दन के शहर जाकर पढ़ाई को लेकर गाँव के सवर्ण लोगों के मनोस्थिति के बारे में जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि “चन्दन जब शहर पढ़ने गया तो जैसे भूचाल आ गया था सारे गाँव में। ब्राह्मण-ठाकुर सबके कान खड़े हो गए थे।”[1] वे सुक्खा को कहते हैं कि चन्दन को शहर से वापस बुला ले, लेकिन सुक्खा गांव के सवर्ण लोगों के मनःस्थिति को अच्छी तरह से जानता है और गाँव के सवर्ण लोगों की बात को टाल देता है। जिसके लिए उसे अपने गांव के सवर्ण समुदाय द्वारा बहिष्कार के दंश को भी झेलना पड़ता है। सुक्खा यह भी जानता है कि दलितों के नरकीय जीवन के उद्धार का एक मात्र जरिया शिक्षा है। यह बड़ी वजह है कि वह चन्दन को शहर से नहीं बुलाता है।

दलित साहित्य महात्मा बुद्ध, ज्योतिराव फुले एवं वैज्ञानिक विचार के आलोकस्तंभ डॉ. भीम राव अंबेडकर के ‘शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो’ की चिंतन प्रणाली को आधार बना कर लिखा गया है। उपन्यास की शुरुआत भारत के पश्चिम उत्तर-प्रदेश के गंगा तट

---

[1] जयप्रकाश कर्दम, ‘छप्पर’, पृ- 34

पर स्थित एक छोटे से गाँव मातापुर से होती है। भारतीय समाज की जो वर्ण-व्यवस्था आधारित सामाजिक संरचना है, उसके तहत अन्य गाँव की तरह ही मातापुर में भी थोड़े से ही लोग सुखी-सम्पन्न हैं एवं शेष लोग दिन-दरिद्र सा जीवन व्यतीत कर रहे होते हैं। जिसके बारे में कर्दम लिखते हैं कि "सुखी-सम्पन्न लोगों में सवर्ण कहलाने वाले ब्राह्मण-पुरोहित, ठाकुर-जमींदार तथा लाला-साहूकार हैं। दूसरे गाँवों की तरह सवर्ण लोग ऊपर की ओर तथा अवर्ण कहे जाने वाले दलित लोग गंगा के बहाव की ओर निचान में बसे हैं। निचान की ओर गाँव के इस छोर का सबसे आखिर घर है सुक्खा का। उसके आगे एक-दो टूटी-फूटी छान झोपड़ियाँ हैं और फिर कूड़-बिठौड़े शुरू हो जाते हैं।"[2]

संपन्न सवर्ण और दलित तथा दरिद्र लोगों के घर और उनका रहन-सहन के बारे में कर्दम लिखते हैं कि "सवर्ण लोगों के घर काफी बड़े, पक्के और प्लास्टरयुक्त हैं। रहने-सहने के लिए दुमंजिले-तिमंजिले और उठक-बैठक के लिए लम्बे-चौड़े अहाते में बैठक या चौपाल और ढोर-डांगरों के लिए जगह अलग।" यूँ कहिये कि संपन्न सवर्ण के हर चीज के लिए अलग सा एक जगह या कमरा है। वहीं जो "दलित और दरिद्र हैं उनके पास रहने-सहने के लिए एकाध पशु, जो वे पालते हैं, उन सबके लिए कुल जमा गारा-मिट्टी की दीवारों पर घास-फूस के छप्पर या तो झोपड़ियाँ हैं एकछत्ती-दुछत्ती। अधिक हुआ तो किसी-किसी के कच्चे कोठे पर बॉस की खपच्ची या खपरैल की छत होती है या पशुओं के लिए छान-झोपडी अलग। यही तक सीमित है उनकी साधन-सम्पन्नता।"[3]

घर के नाम पर सुक्खा के पास भी इस तरह का एक छप्पर है, जिसमें वह अपनी पत्नी रमिया के साथ रहता है। इतने दीनहीन स्थिति में होते हुए भी वह अपने एकलौते बेटे चन्दन को पढ़ाना चाहता है, जिसके लिए वह हर तरह की कुर्बानी देने को भी तैयार है। इस कार्य में उसकी पत्नी रमिया भी अधैर्य होते हुए उसका साथ देती है। चन्दन के शहर में पढ़ने के लिए जाना ही गाँव में भूचाल ला देता है। 'ब्राह्मण-ठाकुर सबके कान खड़े हो गए थे। जैसा की कर्दम लिखते हैं कि "सवर्ण के आँखों के लिए यह बात अनहोनी बात हो गई, अनहोनी ही नहीं, जैसे बड़ा भयंकर

---

[2] वही, पृ- 7

[3] वही, पृ- 7

अनर्थ हो गया।"[4] 'ब्राह्मण और ठाकुर से लेकर लाला-साहूकार तक सब हैं इस गाँव में और बड़े-बड़े पैसे और हैसियत वाले भी हैं लेकिन कभी किसी का बेटा अपने घर या जन्म स्थान छोड़कर कभी बाहर पढ़ने नहीं गया है। लेकिन चन्दन एक चमार का बेटा होकर बाहर पढ़ने के लिए गया तो मानो उनकी नाक कट गयी हो। यह बात स्पष्ट करने के लिए हम काणा पंडित का कथन देख सकते हैं जब वह सुक्खा को तुम अनर्थ कर दिए हो कहते हुए प्रायश्चित के लिए कहता है "प्रायश्चित करना पड़ेगा तुझे सुक्खा—प्रायश्चित। जल्दी से अपने बेटे को शहर से वापस बुला और प्रायश्चित करने को उपाय कर।"[5] काणा पंडित यानी श्रीराम शर्मा के बात को समर्थन करते हुए आगे ठाकुर हरनाम सिंह ने सुक्खा को परोक्ष रूप में धमकी देते हुए कहते हैं "हम जानते हैं सुक्खा, लड़का नई पीढ़ी का है, पढ़ा-लिखा है। कुछ ऊपर उठने और दो पैसे ज्यादा कमाने की इच्छा रखता होगा। पर इसके लिए घर छोड़कर शहर जाने की क्या जरुरी थी। अपना घर और अपनी धरती छोड़कर भी कोई कहीं जाता है भला और तुम्हारा बेटा चला है अपना घर और गाँव छोड़कर। इतनी सारी मिल्कियत फैली पड़ी है हमारी। हमें भी बहुत दिन से एक ईमानदार और पढ़े-लिखे आदमी की जरुरत थी इस सबकी देखभाल और हिसाब-किताब के लिए। तुम्हारे बेटे से ज्यादा विश्वासपात्र आदमी और कौन मिल सकता है हमें। तुम उसे वापस बुला लो, सब दिक्कतें दूर हो जाएगी तुम्हारी।"[6] सुक्खा को यह सब पता है, ऐसे ही उसके बाल सफ़ेद नहीं हुए है, इसलिए वह अपने बेटे को न बुलाने के लिए असमर्थता दिखाता है। सुक्खा का यह रवैया देखकर के सवर्णों को अच्छा नहीं लगा जिसके लिए वह अपने बेटे चन्दन को वापस बुलाने के लिए सुक्खा से कहते हैं, न मानने के कारण उसे 'गोदान' के होरी की तरह अपने घर से बेघर करके उसे मजदूर बनाकर नारकीय जीवन जीने के लिए विवश कर देते हैं। फिर भी वह हिम्मत नहीं हारता है और गांव के सवर्णों के खिलाफ विद्रोह करते हुए अनेकों कठिनाइयों के साथ अपने बेटे को उच्च शिक्षा दिलाने में कामयाब होता है। इस पूरे संघर्ष में उसकी पत्नी रमिया भी आखरी वक्त तक साथ देती है।

---

[4] वही, पृ- 34

[5] वही, पृ- 36

[6] वही, पृ- 36-37

चन्दन जब शहर पहुँचता है तो पता चलता है कि कमोबेश ही सही शहर में भी केवल थोड़े से लोग ही सुखी और संपन्न हैं, शेष लोग आभाव-अनाटन, अन्याय और उत्पीड़न का जीवन जीने को विवश हैं। आदमी को यहाँ भी पेट की भूख के साथ-साथ तन को ढंकने के लिए 'कसरत' करनी पड़ती है और जे.जे. कालोनी कहे जाने वाले झुगी-झोपड़ियों में रहने को विवश होना पड़ता है। थोड़े ही दिन में शहर को लेकर उसकी भावना कल्पना में ही बदल जाता है। गांव और शहर के बारे में कर्दम लिखते हैं कि "केवल 'कालोनी' शब्द ही विभाजक रेखा है गाँव और शहरों के बीच, अन्यथा शहरों इन झुग्गी-झोंपड़ियों या खोलियों में रहने वाले लोगों तथा गाँव में गारा-मिटटी या घास-फूस के झोंपड़े-छप्परों में रहने वाले लोगों के जीवन-स्तर में कोई खास अंतर नहीं है।... वहाँ भी वे नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। शहर में भी बहुत से लोगों को रूखा-सूखा खाना खा कर या चाय पी कर ही जीवन काटना पड़ता है। कईयों के पास दूसरे कपड़े न होने के कारण महिलाएं महीनों तक नहा-धो नहीं पाती हैं, कितनी हीं महिलाओं को खुले छत के नीचे बच्चे पैदा करने पड़ते हैं। यह एक विवशता ही है, एक त्रासदी है उनके जीवन की, जिसे वे नियति का आदेश मान बैठे हैं।"[7]

चन्दन अपनी पढ़ाई के साथ-साथ सदियों से अज्ञान, अशिक्षित, अन्धविश्वास, ईश्वर व्याप्ति, धार्मिक कर्मकांड और पिछड़ेपन के गर्त में पड़े दलित समुदाय के लोगों को वैज्ञानिक तरीके से जागृत करना चाहता है। वह जानता है कि अपने जीवन और समाज में व्याप्त विसंगतियों के विरूद्ध लड़ाई के लिए शिक्षा ही वह मारक शक्तिशाली शस्त्र है, जिससे समाज को बदला जा सकता है। उसके लिए कॉलेज के समय में ही वह स्कूल खोल कर गरीब, दलित बच्चों को स्वयं पढ़ाता है। शहर में आकर वह हरिया नामक एक वृद्ध व्यक्ति के पास रहता है। वैसे उत्तर भारत में जून के अंत तक मानसून आ जाता है पर उस साल नहीं आया तो लोगों ने चिंता प्रकट करते हुए वर्षा के लिए इंद्र देवता की पूजा हेतु चंदा इकट्ठा कर रहे थे, तब चन्दन ने उसका तार्किक और वैज्ञानिक ढंग से विरोध करते हुए लोगों के मन से यह अंधविश्वास दूर करने की कोशिश करता है कि "यह मान्यता गलत है कि यज्ञ करने से भगवान इन्द्र प्रसन्न होंगे और तब वर्षा होगी। वर्षा होगी मानसून के आने से। अभी मानसून नहीं आया है इसलिए वर्षा नहीं हो

---

[7] वही, पृ- 12-13

रही है। यज्ञ-वज्ञ सब बेकार की चीजें हैं। यह पाखंड है, इससे कुछ होने वाला नहीं है। दुनिया में ऐसा कोई देवता या भगवान नहीं है और इसलिए उसके द्वारा वर्षा कराए जाने की कोई संभावना नहीं है।"[8] इस बात के प्रतिक्रिया स्वरूप एक बुजुर्ग चंदन से कहता है सब जीव-जंतुओं में ईश्वर निवास करते हैं यज्ञ के लिए चंदा नहीं देना है कुछ मत दो बाबू, लेकिन इस तरह की उल्टी-सीधी बातें तो मत करो। इस प्रकार कॉलोनी वालों के साथ तर्क-वितर्क करते हुए वह लोगों की ईश्वर भावना को परंपरा से मानने न मानने और सर्व शक्तिमान के बात पर कहता है कि "तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम्हारी जो आज दीन-हीन हालत है, तुम जो रोजी-रोटी के लिए दूसरों के मुंहताज हो और तुमको नीच, अछूत या हेय मानकर दूसरे लोग तुमसे जिस प्रकार घृणा और उपेक्षा का व्यवहार करते हैं, तुम जो शोषण, अपमान और अत्याचार के शिकार हो इस सबका कारण ईश्वर है, वही तुम्हारी दुर्दशा कर रहा है।"[9] इस प्रकार वह कॉलोनी वालों को अपने विभिन्न तर्क के जरिये लोगों को समझाया और लोगों के सोये हुए मन को जगाने की कोशिश करता है।

कमला एक बलात्कार पीड़ित दलित स्त्री है वह अपने लड़के को पढ़ाना चाहती है, परन्तु पिता का नाम न होने के वजह से वह अपने लड़के का नाम नहीं लिखवा पाती है, तब वह प्रश्न करती है कि क्यूँ एक बच्चे के परिचय के लिए पिता का नाम आवश्यक है? क्यूँ माँ का नहीं है? कमला की इस बात से भारतीय समाज की कोरी मानसिकता/मानवीयता की ओर इंगित करते हुए एक दलित स्त्री द्वारा भोगे गए यातना और उसके संघर्ष का प्रतिनिधित करती है। इसमें सिर्फ कमला ही अपनी अस्मिता को लेकर चिंतित दिखाई नहीं पड़ती है बल्कि न जाने कितने ऐसे होंगे जिसका प्रतिनिधित्व करती है कमला। जैसा कि डॉ. आंबेडकर कहते हैं 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो,' आंबेड़कारी विचार के केंद्रीय तत्व हैं, यही दलित मुक्ति के लिये काम्य भी है। दलित साहित्य का मुख्य धेय बौद्ध दर्शन और आंबेडकरी चिंतन है।

[8] वही, पृ- 19

[9] वही, पृ- 21

चन्दन द्वारा शुरू किये गए सुधार कार्य में हरिया, कमला और अन्य कई सारे लोग मिले तो धीरे-धीरे वह आन्दोलन का रूप धारण किया। उससे दलितों में अपने अधिकार को लेकर चेतना पैदा हुई, जिससे आन्दोलन तीव्रतर होता गया। उस आन्दोलन को सामंतवादी और ब्राह्मणवादी पोषक ठाकुर हरनाम सिंह जैसे, अन्य कई 'ऊँची कही जाने वाली जातियों' ने मिल कर दबाने की कोशिश करते हैं। मगर आखिर में रजनी द्वारा अनेकों बार समझाने के बाद उनका हृदय परिवर्तन होता है और वह अपने गुजारे लायक जमीन रख कर बाकि जमीने गरीब, दलित, भूमिहीन लोगों में बाँट देते हैं और साधारण मुनुष्य की तरह जीने लगते हैं। जैसा कि उपन्यास में कर्दम द्वारा दिखाया गया है, आखिर में ठाकुर हरनाम सिंह सुक्खा से कहता है कि "मनुष्यता ही हमारा गोत्र हो, मनुष्यता ही हमारी जाति और मनुष्यता ही हमारा धर्म हो। इसलिए मेरा तुमसे अनुरोध है सुक्खा कि मुझे ठाकुर साहब नहीं, हरनामसिंह भी नहीं, केवल हरनाम कहकर पुकारो तुम, जैसे मैं तुम्हें 'सुक्खा' कहता हूँ।"[10]

जहाँ कमला दलित स्त्री पात्रों का नेतृत्व करती है, वहीं उपन्यास के दूसरी तरफ रजनी सवर्ण होते हुए भी पूरी सहानुभूति के साथ अपने पिता द्वारा दलितों के प्रति असंवेदनीय कार्य की निंदा करते हुए चन्दन का साथ देती है। उपन्यास के अंत में रजनी और चंदन का अन्तर्जातीय विवाह के साथ-साथ मानवीय उदारवादिता को समाज में प्रतिष्ठित कराना और आखिर में रजनी द्वारा ठाकुर हरनाम सिंह का हृदय परिवर्तन कराके उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम एक 'यूटोपिया' गढ़ने का प्रयास करते दिखाई पड़ते हैं और साथ ही बुद्ध, फुले, मार्क्स और अंबेडकर दर्शन का पुट करके संभाव्य: भविष्य के समाज की परिकल्पना के साथ ही शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करने की कोशिश की है।

[10] वही, पृ- 122

1.1.2. 'भेद' उपन्यास की कथावस्तु

जिन विषयों पर अखिल नायक ने अपने उपन्यास में बात की है, उसे कविता, कहानी या लघुकथा के माध्यम से संप्रेषित करना शायद उतना संभव नहीं होता। यह भी सही है कि यथार्थ-चित्रण के लिए सबसे समर्थ विधा उपन्यास है। वे निश्चित रूप से तथ्य और कथ्य दोनों डाल रहे हैं, लेकिन साथ ही वे उन मुद्दों को भी सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं, जो हिंदी और ओड़िया की सदियों से चली आ रही साहित्यिक परंपरा से पूर्ण रूप से भिन्न है। परंपरा से चली आ रही साहित्यकारों ने अपने-अपने साहित्य में यह पहले भी उठाया है, लेकिन वहाँ दलितों को हमेशा पीड़ितों के रूप में चित्रित किया जाता है तो कहीं नम्र, विनम्र और असहाय रूप में। जबकि अखिल नायक के पात्रों में अपने अधिकार और स्वाभिमान को लेकर विद्रोह की भावना दिखाई देता है।

आजादी के बाद समकालीन ओड़िया साहित्य में दलित चेतना से अनुप्राणित दलित विमर्श का साहित्य लिखे गए हैं, जिसमें समानता, भाईचारा के मूल्यों को भी स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इसमें दलित रचनाकार अखिल नायक का 'भेद' उपन्यास प्रमुख है। इसमें मानवीय भाव और एहसासों का स्पर्श है, वे इस उपन्यास के माध्यम से ब्राह्मणों और पुरोहितों की खोखली मानसिकता को रेखांकित करने की कोशिश करतें हैं, जो हमारे सामाज को खोखला बनाने के लिए सक्रिय है। 'भेद' दलित रचनाकार द्वारा लिखा गया ओड़िया भाषा का पहला दलित उपन्यास है। जिसमें ओड़िशा प्रान्त के कालाहांडि जिले के छोटे-छोटे गांव के दलित, गरीब लोगों की दयनीय स्थितियां देखने को मिलती है। ओड़िया साहित्य के सन्दर्भ में जाति और साहित्यिक कल्पना में सामाजिक न्याय की खोज का एक महत्त्वपूर्ण घटक अखिल नायक का 'भेद' उपन्यास है। इसका मुख्य विषय जाति हिंसा की विसंगतियाँ है।

उपन्यास की कथा शुरू होती है फिरोजपुर उच्च प्राथमिक विद्यालय (यू. पी.) स्कूल के हेडमास्टर दिनामास्टर से जिससे मिलने के लिए धरमगड़ के एस. आई. पंडा महोदय पहुंचते हैं। वे एक से पाँच तक सभी कक्षा में जाते हैं और सभी कक्षा के छात्रो से प्रश्न पूछते हुए विद्यालय के पाँचवी कक्षा के एक सबसे होशियार, अच्छे से पढ़ने वाले लड़के निरंजन से कई सारे सवाल पूछने के बाद जब हेडमास्टर का नाम पूछते हैं, तब वह अवाक् होकर सोचने लगता है कि उसे

इस तरह का एक मामूली सवाल क्यों पूछा जा रहा है? क्योंकि थोड़ी देर पहले वह "एप्पल, अम्ब्रेला, एरोप्लेन, एलिफेंट, टुमारो, हाउस आदि अंग्रेजी शब्द का सही-सही उच्चारण कर चटापट कह सुनाया था।"[11] इसलिए वह इस तरह के एक मामूली सवाल पूछ कर एस.आई. महाशय उसके साथ मजाक कर रहे हैं या उसकी प्रतिभा को संदेह की दृष्टि से देख रहे हैं, वह समझ नहीं पा रहा था। निरंजन द्वारा हेडमास्टर का नाम नहीं बता पाने के कारण एस.आई. महोदय नाराज हो करके दिना मास्टर को खरी-खोटी सुनाते हुए पास के बाया वकील के घर चले जाते हैं। बाया वकील उस गाँव का एक प्रतिष्ठित सवर्ण व्यक्ति है, उसका सही नाम बनबिहारी त्रिपाठी है और गाँव का जमींदार भी। उसको उस गाँव के लोगों ने कभी किसी से अनुरोध करते हुए नहीं देख हैं, वे अनुरोध करते हैं तो लगता है आदेश दे रहे हैं। उन दिनों धार्मिक उन्माद का बाजार गर्म था, जिसको देख कर बाया वकील यानि बनबिहारी त्रिपाठी सब हिन्दू भाई-भाई का नारा देते हुए कहते थे कि "विदेशी क्रिश्चियन हमारे हिन्दू भाईओं को क्रिश्चियन बनाने के लिए फुसला रहे हैं।"[12] जिसके लिए वे 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' की एक शाखा खोलते हैं।

उपन्यास का नायक दिनामास्टर का पुत्र ललूट भवानीपटना गवर्नमेंट कॉलेज के युक्त दुई में अध्ययनरत साहजखोला जंगल का सभापति है। उसका बाया वकील के साथ कोई जाती दुश्मनी नहीं थी, क्योंकि "बाया वकील सुमेरु है तो ललटू कुमेरु है।"[13] बाया वकील जाति का ब्राह्मण यानी वर्णाश्रम के अनुसार सबसे श्रेष्ठ जाति और ललटू जाति का डोम यानी अछूत। बाया वकील के साथ ललटू की दुश्मनी का कारण था साहाजखोल जंगल से उनकी चोरी करते हुए लकड़ी भरा ट्रॅक को अटका के रखना। ललटू के बाकी दोस्त बाया वकील का ट्रॅक छोड़ देने के लिए इसलिए कहते हैं कि थानाबाबू उसके हाथ में है और वह एक बार जेल भी गया हुआ था। उसका जेल जाने का कारण यह था कि उसने धरमगड़ ब्लॉक के वीडियो परमानन्द बाग को सरकार द्वारा गरीब लोगों को भत्ता स्वरुप दिए जाने वाले मासिक राशि में से हर एक व्यक्ति से दो-दो सौ रुपये काट लेता था, जो कि उसके जेब में जाता था। उसके गाँव की विधवा बूढ़ी

---

[11] अखिल नायक, 'भेद', पृ- 1

[12] वही, पृ- 21

[13] वही, पृ- 24

चेमेणी के साथ-साथ गाँव के अन्य गरीब लोगों का भत्ता पैसा काट लेता था। इसलिए ललटू ने एक जिमेदार नागरिक होने के नाते उसे पूछते हुए पीटा था।

मंजुला, ललटू के गाँव की एक दलित लड़की है और उसकी अच्छी दोस्त भी है। दोनों जईतपुर माध्यमिक स्कूल में चौथी कक्षा से सातवीं कक्षा तक एक साथ पढ़े है, कक्षा में ललटू पहला स्थान आता तो मंजुला दूसरा फिर भी दोनों में कोई ईर्ष्या की भावना नहीं थी। इसलिए 'सातवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा में वह 'ए+ग्रेड' में पास होगा ऐसा सारे शिक्षक अनुमान कर रहे थे। अगर ऐसा नहीं भी हुआ तो वह 'ए ग्रेड' तो पक्का है।' 'ए ग्रेड' में पास करने से उसे भवानीपाटना ब्रजमोहन हाईस्कूल में पढ़ाएंगे उसके पिता दिना मास्टर सोचे थे। किन्तु ललटू ने मंजुला के पास कसम खायी थी कि अगर उसके पिताजी मार डाले तो भी वह भवानीपाटना नहीं जायेगा। युवराज जईतपुर के जमींदार दनार साहू का भतीजा है। बाया वकील द्वारा बनाई गई शाखा से जब ललटू अपने दोस्तों के साथ लौट रहा था तब युवराज ललटू को एक लिखा हुआ कागज देते हुए मंजुला को देने को कहता है जिसमें लिखा होता है "आई लव यू, योर लवर युवराज'।"[14] अगले दिन जब ललटू शाखा में जाता है तब युवराज के साथ उसका झगड़ा होता है। ललटू एक डोम जाति का लड़का होने के कारण जईतपुर के तेली गोष्ठी के लोग युवराज को अपने जाति में लाने के लिए दिनामास्टर का आर्थिक शोषण करते हैं। आर्थिक शोषण स्वरुप उनसे गाँव के पंचायत द्वारा फैसला सुनाया गया कि "पर मास्टर, युवराज अब फिर से हमारी जाति में आएगा, उसके लिए जो खर्च होगा उसे कौन देगा? कितना खर्च है? 'जाति भाईओं के खाने के लिए पंद्रह किलो चावल, दो किलो दाल, सब्जी, तेल, मसाला और दो सौ रुपये।"[15] दिनामास्टर ने कुछ भी बोले बिना दो सौ रुपये दे दिए।

सेमी सेठ जूनागढ़ के 'दंतेश्वरी राइस मिल' का मालिक उसके पिता पवना सेठ उसके पिता का नाम ओमप्रकाश अग्रवाल है। 'सन 1938 को जब दुर्जन माझी बेहेड़ा के जमींदार थे तब वह मिटटी का तेल बेचने के लिए जुनागढ़ से बैल गाड़ी में पहली बार बेहेड़ा के हाट में आये थे। जुनागढ़ में तब वे पंद्रह-बीस साल पहले से रहते आ रहे थे और उन्होंने वहीं पर अपना एक

---

[14] वही, पृ- 27

[15] वही, पृ- 29

मकान भी बना लिया था। पंद्रह-बीस साल पहले पवन अग्रवाल के पिता ओमप्रकाश अग्रवाल, अपने बाल-बच्चों को लेकर राजस्थान के रतनगढ़ से आए थे।' जमींदार दुर्जन माझी था जाति में भतरा और सादा-सीधा सरल व्यक्ति। एक बार उनके कान की बीमारी की वजह से इतने तेज दर्द किया की कोई वैद या कविराज सही नहीं कर पाए तब पवना सेठ ने कहीं से किसी पेड़ के पत्ते को अपने हाथ में घिसते हुए उसका रस उसके कान में डालते ही उनके कान में से दो-चार कीड़े निकले जिसे देख कर दुर्जन माझी कहने लगे कि "मुश्किल हालत में साथ देने वाले दोस्त ही सच्चे दोस्त हैं।"[16] उस घटना के बाद पवना सेठ और दुर्जन माझी जमींदार की अच्छी दोस्ती हो गई थी। उन्होंने सेमी सेठ को यह कहते हुए कि इतनी दूर से आप यहाँ पर सामान बेचने आते हो कितना तकलीफ हो रहा होगा आपको, इसलिए मैं आज ही एक जमीन आपके नाम लिख देता हूँ। उसके बाद पवना सेठ बेहेड़ा में आकर बस गए और तीस साल के बाद उनके पास पैंतालिस एकड़ उर्वर जमीन खरीदने के साथ-साथ वो समय गुजरने के साथ बेहेड़ा गाँव के तीन भाग जमीन में से एक भाग जमीन उनकी हो गयी थी।

सरकार ने उस समय 'अणकुशली'/अकुशल श्रमिकों के लिए पारिश्रमिक मूल्य 25 रुपए तय किया था। सरकार द्वारा निर्धारित किए गए पारिश्रमिक मूल्य न देने के कारण मजदूर वर्ग राइस मिल में काम न करने के लिए धरणा पर बैठे हुए थे। जिसके अगुवाई नेता संवाददाता ललटू और मूना हैं। पाँच साल पहले लकड़ी का पटा कारोबार, तीन साल पहले महुआ गोदाम में ताला, दो साल पहले नमक व्यापार के साथ-साथ तीस लाख की राइस मिल आज बंद होने की कगार पर है। इसके मूल में सेमी सेठ ललटू को दोषी मानते थे। क्योंकि वे एक बार पंचायत इलेक्शन में ललटू द्वारा खड़े किए गए दलित नेता रघु मेहर से हार गए थे।

गाँव के शिव मंदिर में देव की बहन उर्कुली, कुरूपा के बुआ फेदो को मंदिर प्रवेश को लेकर पुजारी का कहना था कि "डोम जाति का मंदिर में प्रवेश मना है।"[17] परोक्ष में एक सवर्ण व्यक्ति द्वारा उनको गंदी-गंदी गाली देने को लेकर दो 'गोष्ठी' के बीच में मारपीट होती है। जिसमें मुना की सिलाई की दुकान के साथ-साथ बेहेड़ा गाँव के डोम बस्ती को भी जला दिया जाता है।

---

[16] वही, पृ- 47

[17] वही, पृ- 58

श्रीपंचमी में स्कूल के सरस्वती पूजा के लिए पूजा में क्या-क्या भोग होगा ये बात करते हुए हेडमास्टर मिश्र जी कहते हैं जो ज्यादा पैसा देगा उसको यजमान किया जाएगा। ललाटेन्दु दूरिया पंद्रह रुपये देने के लिए जब हाथ उठाया तो मिश्र जी 'तात्सल्य'/कटाक्ष करते हुए कहने लगे कि "पंद्रह छोड़ पच्चीस भी दोगे तो तुम्हें यजमान नहीं बनाया जाएगा, आगे जाकर ये भी कहना कि 'हम इंसान जब डोम के हाथ से पानी नहीं पीते हैं तो देवी सरस्वती कैसे भोग को स्वीकारेगी?"[18] शिक्षक के इस उद्धरणो से ललटू सोचने लगता है और शास्त्र को नकारते हुए कहा कि इस तरह कि शिक्षा स्कूल में माता सरस्वती ही देती हैं। इसलिए वो अपने गाँव के लोगों के सहमति के साथ सरस्वती पूजा बंद करवा देत है। पूजा बंद करने के पीछे उसका यही तर्क था कि "स्कूल कॉलेज में तो विभिन्न जाति और धर्म के बच्चे पढ़ाई करते हैं। तो वहाँ पर एक ही धर्म की पूजा होना क्या सही है? और स्कूल कॉलेज तो ज्ञान अर्जन के जगह हैं, वहाँ पर अंधविश्वास फैलाना क्या सही बात है?...स्कूल में जब कई धर्म के बच्चे पढ़ रहे हैं तो एक ही धर्म की पूजा क्यूँ की जाए?"[19]

मास्टरानी, दिनबंधु दुरिया की धर्म पत्नी और ललटू के माँ एक दलित महिला हैं। दिना मास्टर की तरह वह भी पढ़ी-लिखी महिला है, उसे नौकरी मिल सकती थी। लेकिन वह अपने परिवार के लिए अपने इच्छा की बलिदान दे देती है। प्रारंभ में वह बिडी धुंगिया पुरोहित बाबा के कहने से कुछ प्रथाओं में विश्वास करती है, जो उसे उच्च जाति से विरासत में मिली होती है। ऐसा इसलिए भी कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में उच्च जातियों की नक़ल कर रही होती है। उसके बाद वह मंदिर में पूजा करने के लिए जाती है, व्रत रखती है, और भी कई तरह की सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वास का हिस्सा होती है। उनको लगता है कि ललटू को वह शिव जी के वरदान से प्राप्त किये हैं। जिसके लिए वह ललटू को देर रात तक भवानीपाटणा से जब नहीं लौटता है तो एक माँ के हृदय में अपने बच्चे के लिए मन में जो भावनाएं उमड़ती है, उनके मन में भी वही भावनाएं उमड़ती रहती है। अपने बच्चे के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शंका-आशंकाएं से दूर रखने के लिए देवी माँ से विनती करते हुए कहती है "माँ 'ठुटी माएली', बेटा

[18] वही, पृ- 77

[19] वही, पृ- 85-86

मेरा सही सलामत घर लौट आये। आने वाले दियाल यात्रा को भूरे रंग की बकरी तेरे लिए बलि चढ़ाउंगी। मेरे बेटे के साथ कुछ अनिष्ट न हो।"[20] उनके गाँव के बीरु जब उनसे कहता है कि ललटू का कुछ नहीं हुआ है वह सही है और भवानीपाटना जैल गया है। अपना लड़का सही है सुन कर वह अपने को आश्वस्त करती है और कहती है क्यों वह जैल गया है तब बीरू कहता है आप नहीं जानते है क्या कल मंदिर प्रवेश को लेकर दो गोष्ठी में झगडा हुआ है, जिसमें कुरूपा का सर फटा है उन्हीं लोगों को लेकर ललटू जेल गया है। यह बात सुन कर मास्टरानी सोचने लगती है कि वह भी पहले मंदिर में पूजा करने के लिए जाती है मगर उसे पूजा करने की अनुमति नहीं दिया जाता, वह गर्भगृह में नहीं जा सकती है। यह एक विडम्बना-बोध है दलितों के लिए।

मास्टरानी एक सपाट चरित्र नहीं है बल्कि एक गोल पात्र है। वह हमारे सामने विद्रोह करती हुई एक मजबूत चरित्र के रूप में उभरती है। गाँव के उर्कुली और फेदो के शिव मंदिर प्रवेश को मना करते हुए जब उस गाँव के शंकर जमीदार ने माँ-बहन की अश्वलील शब्दों में गाली दी, तब वह उसकी निंदा करती हुई अचानक गर्जन करती हुई कहती है "तेरी माँ-बहन को अगर कोई गन्दी गाली दे तो क्या तू उसे न मार कर ऐसे ही छोड़ देगा? कौन छोड़ देता? अगर वह माँ का बेटा होगा, तो छोड़ देगा? मुना सुबह जो बोल रहा था, शंकरा को तो जिन्दा जला देना चाहिए था...।"[21]

बीरू के जाने के बाद मास्टरानी कुछ सोचने लगती है तब उन्हें मुना का खून से लथपथ चेहरा और कुरुपा का हँसता हुआ मुँह याद आते हैं। तब वह अपने को सुनाते हुए कुछ-कुछ कहने लगती है। शाम को कोई बोल रहा था कि बेहेड़ा के डोम साई की बस्ती को गाँव वालों ने जला दिया है। गांवों में कई बार घुमने के लिए गयी है, इसलिए वह कहने लगी कि 'किस-किस का घर जला दिए हैं? कुरूपा, धनु और देव इन सबका क्या? सभी का छोटा-सा मिटटी का घर है, मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। मुना का घर? अगर मुना का घर जला दिए होंगे तो बेचारी विशाखा दीदी दो-दो छोटे-छोटे बच्चों को लेकर कहाँ जायेंगी? मुना जो शास्त्री चौक में सिलाई

[20] वही, पृ- 62

[21] वही, पृ- 64

की दुकान लगवाया था उसको भी वो लोग जला दिया है जिससे उसका परिवार चलता था।' ये बातें सुन कर मास्टरानी कहती है 'मुना उन लोगों का क्या बिगाड़ा था, अगर कुरूपा ने उस शराबी शंकर को मुक्का मारा तो कुरूपा को दो-चार मुक्का मार लेते वो लोग'।

आगे मास्टरानी ने विचार मग्न होते हुए सोचने लगती है कि 'कुरूपा क्यों शंकर को मारता है? उसके माँ-बहन को उस शराबी ने गाली दी इसलिए न! डोम लोग को मंदिरे में जाने के लिए मना करने वाला कौन है वह? महादेव क्या उसके बाप कि जायदाद है?' 'डोम औरत ने क्या तेरे घर के पीछे पैखाना थोड़े ही किया था जो कि तू उन्हें ऐसी गाली देगा। कौन-से शास्त्र में लिखा है कि डोम मंदिर में नहीं जा सकता है? उस शास्त्र को तुमने लिखा है या तुम्हारे बाप ने या तेरे पहले की पीढ़ी वालों ने लिखा है। हरामजादा शास्त्र दिखा रहा है!' इसके बाद मास्टराणी ने उसकी भर्त्सना करते हुए, हम क्या शास्त्र नहीं पढ़े हैं। तब वह ओड़िया कवि बलराम दास का लक्ष्मी-पुराण शास्त्र का हवाला देते हुए महाप्रभु बलराम की कथा सुनाते हुए कहती है कि "बलराम ने चंडालिनी की नींदा की थी इसलिए भीख का कटोरा थाम कर उन्हें घर-घर भीख मांगनी पड़ी थी। यह बात क्या शास्त्र में नहीं लिखी है?"[22]

आगे वह शंकर की भर्त्सना करते हुए यह भी कह देती है कि "तेरे दादा बेचारे अछे थे, स्वर्ग में हैं, कितनी जायदाद बना के गए हैं। पर उसका बेटा, तेरे बड़े बाप, सुग्रीब गाँव के बहु-बेटी को रास्ते में चलने नहीं दे रहा था। भगवान क्या इतना पाप सहते इसलिए सांप बन कर काटे उसे, वह मरा नहीं गाँव से एक पापी गया है, और तेरे बाप विभीषण क्या कम है! इसे मार उसको पकड़, उसके पके खेत उजाड़ना उसका काम था। इतने सारे पाप को हजम करना क्या छोटी बात है, आधी उम्र में ही शराब, गंजा उसे खा गया। उसके बाद भी तू नहीं सुधरा 'लक्ष्मीछड़ा', मैंने नहीं देखा क्या हाथ में कटोरा लिए कल सेमी सेठ के पास पांच रुपये के लिए गिड़गिड़ा रहा था। तू बोल रहा है डोम को मंदिर जाना मना है? शास्त्र में लिखा है! तेरे उस

---

[22] वही, पृ- 65

शास्त्र के ऊपर थूकता हूँ मैं...थू...।' और सच-मुच थूक देती हैं वह थूक शास्त्र में न जाकर दीवार पर गिरता है।"[23] ऐसा करते हुए मास्टरानी प्राकृतिक स्थिति में दिखाई देने लगती हैं।

संतोष पंडा एक सवर्ण व्यक्ति 'हस्तक्षेप' पत्रिका के पत्रकार हैं। जिन्होंने एक बार ललटू को जेल से छुड़ाया था जब उसने वीडिओ को मारा था तब। वैसे 'हस्तक्षेप' पत्रिका का संपादक सुरंजन मोहान्ती है। नकुल रथ एसीपी नहीं डीएसपी हैं उनसे संतोष पंडा को यह बात पता चलती है कि ललटू स्कूल में पूजा करना बंद करवा दिया है। अंत में इस धार्मिक उन्माद का रूप इतना विकराल रूप धारण कर लेता है या हो जाता है कि दो दिन के बाद 'हस्तक्षेप' खबर के पहली पन्ना में यह छपा होता कि "मंदिर में गाय की हड्डी फेंकने को लेकर जातीय संघर्ष : संवाददाता समेत पंद्रह गिरफ्तार।"[24]

समाज अपने आप को कितना भी आधुनिक क्यों न मान लें पर आज भी समाज में प्रचलित जाति-भेद की कठोरता और उसके निंदनीय परिणाम देखने को मिलती है, जो इस उपन्यास में वर्णित है। इस उपन्यास में शोषण के विरोध में कथा नायक की असहायता के भीतर भी उसकी दृढ़ता और आत्मविश्वास सभी के लिए प्रेरणादायी है। दलित चिंतकों को पढ़ते हुए यही प्रतीत होता है कि 'दलितों का सबसे बड़ा शत्रु ब्राह्मणवाद और 'पूंजीवाद' है। इनका प्रतिकार करना पहली आवश्यकता होनी चाहिए। ब्राह्मणवाद और पूंजीवाद के बीच मिलीभगत के कारण ही कैसे एक शोषणतंत्र के भीतर शिकार होने वाली दलितों की जीवन स्थिति उसके साथ इस शोषणतंत्र के विरोध में दलित के मन में जो विद्रोह की भावना का उद्रेक होता है वह किस हद तक जाता है यह इस उपन्यास की विषयवस्तु है।

1.2. विवेच्य उपन्यासों की अंतर्वस्तु का तुलनात्मक-अध्ययन

अभिव्यक्ति के लिए कविता, कहानी, निबंध, नाटक आदि विधाएँ हैं, परंतु मध्यवर्गीय समाज की यथार्थपूर्ण अभिव्यक्ति उपन्यासों में ज्यादा होती है, जैसा कि उपन्यास की विकास में

[23] वही, पृ- 65

[24] वही, पृ- 88

मदाम स्टेल ने मध्यवर्ग का उदय आवश्यक माना है। उनका कहना है कि “यह वर्ग कला के लिए आवश्यक स्वतंत्रता और ईमानदारी जैसे गुण को बढ़ावा देता है।’...उपन्यास आधुनिक युग के नए दृष्टिकोण की कला है, वह नई यथार्थ चेतना की देन है।”[25] ‘महाकाव्य’ में जहाँ सामंत-युग का चित्रण देखने को मिलता वहीं उपन्यास में मध्यवर्ग का पूंजीवाद के प्रभावस्वरूप त्रासदी पूर्ण वर्णन देखने को मिलता है। इस सन्दर्भ में कथा सम्राट प्रेमचंद का कहना है कि “मैं उपन्यास मानव-जीवन का चित्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मुख्य स्वर है।”[26]

साहित्य में अभिव्यक्ति के किसी भी माध्यम के लिए वस्तु के साथ-साथ रूप का भी सवाल महत्त्वपूर्ण होता है। वस्तु और रूप के मेल से अंतर्वस्तु का निर्माण होता है। यहाँ वस्तु से तात्पर्य विषय-वस्तु से है। प्राय: यह समझ जाता है कि वस्तु और अंतर्वस्तु एक है जबकि इसमें बुनियादी भेद है। रचनाकार के अंतर्दृष्टि के सर्जनात्मक होने के कारण एक विषय के प्रकार के रचना में उनकी अलग-अलग अंतर्वस्तु देखा जाता है जैसे ‘गोदान’ और ‘मैला आँचल’ दोनों की विषयवस्तु तो ग्रामीण है परंतु दोनों की अंतर्वस्तु अलग है। वैसे ही ‘छप्पर’ और ‘भेद’ उपन्यास की विषयवस्तु तो दलित चेतना की है परंतु उनकी अंतर्वस्तु अलग-अलग है। उपन्यासों में सर्जनात्मक का महत्व को स्पष्ट करते हुए डी. पी. मुखर्जी ने लिखा है कि ‘‘सर्जनात्मक कल्पना वास्तव में ‘आशाबद्ध’ स्मृति है। वाह्य वास्तविकता से लेखक के दृष्टिकोण की संवाद के सहारे रचना की अंतर्वस्तु का निर्माण होता है और इसी प्रक्रिया में अपरिचित वस्तुएँ परिचित बनती है।”[27]

1.2.1. ‘छप्पर’ उपन्यास की अंतर्वस्तु

साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है। साहित्य समाज की चेतना का निर्माता है, समाज साहित्य से अपने अतीत और वर्तमान के प्रति सजगता ग्रहण करता है। साहित्य समाज का ऐसा परिधान है जिसे साहित्यकार जनता के

---

[25] मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, पृ- 137

[26] स. डॉ. नामदेव और डॉ.नीलम, ‘छप्पर’ की दुनिया (मूल्यांकन और अवदान) भूमिका से

[27] मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, पृ- 102

जीवन की चित-वृति को ताने-बाने से बुनता है। साहित्यकार की संवेदनशील के माध्यम से साहित्य विशाल मानव-जाति की आत्मा के स्पंदन को ध्वनित करने में समर्थ होता है। वह जीवन की व्याख्या करता है, इसीसे उसमें जीवन देने की शक्ति आती है। कॅाडवेल का मानना है कि 'साहित्य समाज की सीपी में जनम लेता है।' साहित्य जहां सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का स्रष्टा होता है, वही उसे प्रभावित भी होता है।

दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षक जयप्रकाश कर्दम द्वारा लिखा गया 'छप्पर' उपन्यास स्वान्तत्र्योतर भारत की सामाजिक-संरचना के इस तथ्य को भी उजागर करता है कि इनमें से अधिकतर मजदूर, गरीब, दलित समुदाय के लोग हैं। इसमें जाति-व्यवस्था को सामाजिक संरचना के चालाक लोग द्वारा हथियाने की साजिश की गई है। जाति-व्यवस्था एक अमानवीय व्यवस्था है जिसे व्यक्ति को आत्म-केंद्रित और कुंठा ग्रस्त बना देता है। इस सन्दर्भ में डॉ. आंबेडकर का यह कथन कि "अस्पृश्यता, जाति व्यवस्था का विस्तार है। दोनों का पृथक्करण नहीं हो सकता। दोनों साथ रहेंगे तथा साथ ही समाप्त होंगे।"[28] समाज में छुआ-छूत ऊँच-नीच को बढ़ावा देने में हमारे शास्त्रों की भी बहुत बड़ी भूमिका रही है, जिसे अनेक प्रमाण के द्वारा पुष्ट किया गया है। ये संभ्रांत लोगों की सोची-समझी साजिश ही है जो समाज के गरीब लोगों का सदियों से शोषण करते आये हैं। जाति-व्यवस्था का दंश चाहे ग्रामीण-स्तर पर हो या शहरी स्तर पर, दोनों जगह की सामाजिक-संरचना में कमोवेश महत्त्वपूर्ण भूमिका रखती है। इस उपन्यास में जाति-व्यवस्था का अमानवीय कार्य बहुत बारीकी से अध्ययन सिर्फ नहीं करता हैं बल्कि उसके खिलाफ आंदोलन करके उसे तोड़ने की कोशिशें की गई है साथ ही शिक्षा मानव जीवन के लिए कितना महत्त्व रखती है उसको दिखाया गया है।

'छप्पर' जैसा की नाम लेने से ही पता चल जाता है कि घास-फूस, लकड़ी से बनाया गया घर। उसमें रहने वाले लोग ही जानते हैं कि समय की मार ने उनके ऊपर किस प्रकार का जुल्म ढहायाता है, ऊपर से पंडा पुरोहितों की सामाजिक भेद-भाव। जो गरीब को समाज में ऊपर उठने नहीं देता। उनसे छुटकारा पाने की संघर्ष गाथा है यह उपन्यास। उपन्यास की कथा शुरू होती है भारत प्रांत की पश्चिम उत्तर-प्रदेश 'गंगा' तट का एक छोटे-से गाँव मातापूर से। "अन्य

---

[28] संपादक, रणजीत, जाति का जंजाल, पृ- 83

भारतीय गाँव की तरह ही मातापुर में भी थोड़े से लोग सुखी-सम्पन्न तथा शेष लोग दिन और दरिद्र हैं। सुखी-सम्पन्न लोगों में सवर्ण कहलाने वाले ब्राह्मण-पुरोहित,ठाकुर-जमींदार और लाला-साहूकार हैं। दूसरे गाँवों की तरह सवर्ण लोग ऊपर की ओर तथा अवर्ण कहे जाने वाले दलित लोग गंगा के बहाव की ओर निचान में बसे हैं। निचान की ओर गाँव के इस छोर का सबसे आखिरी घर है सुक्खा का। उसके आगे एक-दो टूटी-फूटी छान-झोपड़ियाँ हैं, और फिर कूडी-बिठौड़े शुरू हो जाते हैं"।[29] उपन्यासकार कर्दम जी की इन शुरुआती पंक्तियों से हमें सवर्ण-अवर्ण की सामाजिक स्थिति का ही नहीं बल्कि भारतीय सामाजिक-संरचना की मूलभूत ढांचों से भी परिचय कराती है, जिसका आधार वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद है। इसी आधार पर पूरा भारतीय ग्रामीण समाज बँटा हुआ है। जहां एक ओर ऊंचे स्थान पर सवर्ण जातियाँ के लोग हैं वही दूसरी ओर निचले स्थान पर दलित गरीब जातियाँ के लोग हैं। गाँव एक इकाई होते हुए सवर्ण-अवर्ण, ऊँच-नीच के जातिगत भेद-भाव पर विभक्त है। वर्णव्यवस्था और जातिवाद को मजबूत आधार प्रदान करने में हमारे तथाकथित धार्मिक ग्रंथ और आत्मनिर्भरशील ग्रामीण-व्यवस्था का बहुत बड़ा रोल रहा है। वे आर्थिक रूप से पिछड़े रहने के कारण हर एक व्यक्ति एक-दूसरे के निर्भर रहता है। इसी निर्भरता ने ही ग्रामीण समाज-व्यवस्था में दलितों को नीचे स्थान की ओर धकेल दिया है। जहां सम्पन्न सवर्ण लोग बड़े-बड़े पक्के मकानों में रहते हैं वहीं दलित गरीब लोग मिट्टी के दीवारों चाल-छप्पर जैसे घर में घास-फूस डाल कर रहते हैं। जहां सम्पन्न सवर्ण लोग समाज में उपलब्ध सुख-सुविधाएं भोग करता है वही दलित-गरीब जी-तोड़ मेहनत करके भी एक वक्त के खाने के लिए तरसता रहता है। यहीं भारतीय ग्रामीण समाज की वास्तविक सच्चाई है।

उपन्यासकार ने सुक्खा के परिवार के माध्यम से ग्रामीण समाज के जातिवादी चरित्र को दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार वर्णव्यवस्था और जातिवादी व्यवस्था द्वारा दलितों का शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार होता है। ब्राह्मणों और सामंतों के गठबंधन ने मिलकर सामाजिक संरचना पर अपना आधिपत्य कायम रखने के लिए जाति नामक ऐसे संस्था का विकास किया जिससे भारतीय समाज का एक हिस्सा सामाजिक रूप से मुख्यधारा में कभी आ ही नहीं पाया। सुक्खा इस वर्णव्यवस्था और जातिवादी को कायम रखने वाले ब्राह्मणों और सामंतों के खिलाफ विद्रोह की नींव रखता है। सुक्खा अपनी पत्नी रमिया के साथ अपनी घास-

[29] 'छप्पर', पृ- 07

पुस की छप्पर में रहता है। कोठर परिश्रम और दमे की बीमारी ने उसे असमय ही बूढ़ा बना दिया है। वह इस असाध्य बीमारी से मुक्ति तो चाहता है पर गरीबी ने उसे हमेशा घेरा रहा ऊपर से चंदन की पढ़ाई-लिखाई के खर्च को लेकर चिंता रहती थी। सुक्खा अपनी पत्नी रमिया से कहता है कि चंदन के माँ क्या कुछ कर पाया हूँ मैं उसके लिए, न ढंग से खिलाना ना पिलाना? फिर भी वह आस्थावान है, उसके लिए वह कई कष्ट उठाने को तैयार होता है और अपने पत्नी रमिया से कहता है "चुप रह पगली, कोई पेट से बड़ा बनकर आता है। पढ़-लिखकर बड़े बनते हैं सब। क्या पता हमारा चन्दन भी कल को कलक्टर या दरोगा बन जाए। अपनी चिंता छोड़, हमें थोड़े दुख उठाने पड़ रहे हैं तो क्या, दुख के बाद सुख आता है। हमारे जीवन में भी बहुरंगे कभी न कभी।"[30] उसकी पत्नी रमिया और कितना पढ़ेगा कहती हुई एक भारतीय नारी की तरह अपनी पति की इस उच्चाभिलषा में साथ देती हुई चंदन के लिए बड़े से बड़े त्याग करने को तैयार दिखाई देती है। वे नहीं चाहते हैं कि चंदन भी उनकी तरह बदतर जिंदगी जिए, यहाँ-वहाँ भटके फिरे और गाँव में लाला- साहूकारों की जी हजूरी करता फिरे या रहे साथ ही माँ-बहन की गालियाँ सहे, रूखी-सुखी रोटियाँ खाते हुए पशुवत जीवन जिये। उनमें सब कुछ सहन करने की शक्ति है परंतु चंदन के जीवन की बर्बादी उनसे नहीं देखी जाएगी। इससे छुटकारा पाने के लिए वे चंदन को शहर में पढ़ने के लिए भेजते है। यहाँ पर अंबेडकर द्वारा दिए गए आदर्श वाक्य 'शिक्षित बनो और संगठित रहो' का उच्च आदर्श भाव दिखाई देता है। क्योंकि शिक्षा ही वह मार्ग है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन के अंधकार को दूर करने का प्रयास कर सकता है।

रमिया द्वारा उठाए गए सवाल और कितना पढ़ेगा चंदन? यह सिर्फ अकेले चंदन के लिए नहीं, न जाने कितने दलित समाज के नवयुवकों के जिंदगी के सवाल का प्रतिनिधित्व करता है चंदन। जो पढ़-लिख कर अपने साथ-साथ अपने समाज का उत्थान और विकास के लिए संघर्षरत उन ब्राह्मणवादी और सामंतवादी शोषण, उत्पीड़न से मुक्ति के लिए कर रहा होता है जो हजारों सालों से दलितों को शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक अधिकारों से वंचित करके उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना को कुंद कर दिया गया है। जिससे भारतीय समाज का एक हिस्सा सामाजिक रूप से जीवन की मुख्यधारा में कभी आ ही नहीं पाया। प्रेमचंद के शब्द में कहें

[30] वही, पृ- 11

तो "संस्कृति अमीरों का, पेट भोर का, बेफ़िक्रों का व्यसन है, दरिद्रों के लिए प्राण रक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है।"[31] इसलिए दलितों का मानना है कि उस संस्कृति में था क्या है जिसकी वे रक्षा करते? जनता जब मूर्छित थी तब उस पर धर्म और संस्कृति का मोह छाया हुआ था। आजादी के बाद जब डॉ. अंबेडकर के प्रयासों से संवैधानिक अधिकार मिला तो उनमें सामाजिक जनतान्त्रिक और मानवीय अधिकारों के प्रति जागृति पैदा हुई, साथ ही जीवन में नए मूल्यों का संचार हुआ। ज्यों-ज्यों उनमें चेतना जागृत होती जाती है वे देखने लगते हैं कि जिसकी वो सदियों से रक्षा करता आया है वह संस्कृति लुटेरों की संस्कृति थी, जो कभी राजा बनकर, कभी विद्वान बनकर और कभी जगतसेठ बनकर साधारण जनता को लुटती रही है। ऐसी सांस्कृतिक-विरासत का विरोध करना दलित चेतना के सरोकार में शामिल है। जब उन्होंने शिक्षा का महत्त्व को समझ कर उसे प्राप्त करने की कोशिश की तो पूरा सवर्ण समाज उनके खिलाफ खड़ा हो गया और उसे हथियाने लगा है।

दलितों में जब यह चेतना आयी कि उच्च-शिक्षा से ही समाजिक सम्मान के साथ जिया और रहा जा सकता है और समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसलिए सुक्खा चंदन को शहर उच्च शिक्षा के लिए भेजता है। उसका शहर में उच्च शिक्षा के लिए जाना ही जैसे मातापूर गाँव में भूचाल ला देता है। जिससे वहाँ के ब्राह्मणों-ठाकुरों को अनहोनी बात लग गई, सिर्फ अनहोनी ही नहीं अनर्थ भी लगा। चूंकि चंदन एक चमार का लड़का था और एक चमार का लड़का का शहर में जाकर पढ़ना वहाँ के सवर्ण लोगों को सुहाया नहीं। ब्राह्मणों और ठाकुरों से लेकर लाला-साहूकार तक जहां सब बड़े-बड़े पैसे और हैसियत वाले आज तक किसी का लड़का शहर पढ़ने नहीं गया। चमार सुक्खा का बेटा शहर पढ़ने गया तो उन सबकी मानो नाक कट गई है। काणा पंडित यानी श्रीराम शर्मा के दृष्टि में यह महाअनर्थ की बात हो गया। जिसके लिए क्रोधिति होते हुए सुक्खा से कहते हैं कि "तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्म-शास्त्र से बड़ा नहीं हो सकता तू। अपमान करता है धर्म-शास्त्र का, वेद-वेदांगों का और पूछता है क्या हुआ, नास्तिक।"[32] एक दलित लड़का का उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार उनको धर्म-शास्त्र और वेद-वेदांगों का विरुद्ध और अपमान लगता है। इसके लिए काणा पंडित सुक्खा को प्रयश्चित

[31] ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ- 28

[32] 'छप्पर', पृ- 35

करने को कहते हैं। उसकी दृष्टि में प्रायश्चित करने का एक ही उपाय है और वह जल्द से जल्द चंदन को शहर से वापस बुला लाएँ। गाँव के ठाकुर हरनाम सिंह ने भी उनको समर्थन देते हुए सुक्खा को समझाया कि चंदन को घर-द्वार छोड़ कर शहर जाने की क्या जरूरत है। इसके लिए 'अपना घर और धरती छोड़ कर कोई कहीं जाता है भला; चूंकि उन्हें अपनी मिल्कियत के देख-रेख के लिए एक पढ़े-लिखे आदमी की जरूरत थी। समझाते हुए अप्रत्यक्ष धमकी के साथ ठाकुर साहब सुक्खा को कहते हैं कि "तुम्हारे बेटे से ज्यादा विश्वासपात्र आदमी और कौन मिल सकता है हमें। तुम उसे वापस बुला लो, सब दिक्कतें दूर हो जाएगी तुम्हारी।"[33] सुक्खा गाँव के ठाकुर और साहूकारों के इस मनस्थिति को भली-भांति जानता है इसलिए वह ठाकुर हरनाम सिंह द्वारा कही गयी बात को टालते हुए चंदन को ना बुलाने की असमर्थता जताता है। काणा पंडित चुपचाप दोनों के संवाद को सुन रहा था उसने देखा की सुक्खा किसी भी तरह से अपने बेटे को वापस बुलाने को तैयार नहीं है तो बीच में ही कूद पड़कर ठाकुर साहब को संबोधित करते हुए कहने लगता है कि "सुन लिया ठाकुर साहब। ये आलम है इन लोगों के। एक तो अनर्थ करता है ऊपर से मुहँ लड़ाने से भी बाज नहीं आता है। अछूतद्धारों का नतीजा है यह सब। और कर हरिजनों का उद्धार, और सिर चढ़ा लो इनको। अभी तो देखना हम सबके सिर पर मूतेंगे ये?"[34] ये क्यों नहीं चाहते हैं कि कोई दलित लड़का पढ़-लिख कर समाज में सम्मान के साथ जिये। क्यों वे आज भी उनको गुलाम की तरह देखना चाहते हैं। आखिर में वही हुआ जो सुक्खा को डर था प्रायश्चित स्वरूप गाँव के सवर्ण लोगों के पंचायत व्यवस्था ने उसको अपनी घर-बार जमीन से बेदखल कर मजदूरी करने के लिए विवश कर दिया। जिस प्रकार 'गोदान' में होरी को एक किसान से मजदुर बना दिया जाता है ठीक उसी प्रकार यहाँ भी सुक्खा के परिवार के साथ हुआ है। यही ग्रामीण पंचायती राज का घिनौना रूप है जिसे आज की वर्तमान शासन-व्यवस्था पुनर्जीवित करके जातिवादी वर्ण-व्यवस्था को ही मजबूत कर रही है।

हमेशा की तरह सवर्ण समाज अपनी रणनीति में कामयाब हो जाता है। इससे काणा पंडित और हरनाम सिंह बहुत खुश होते हैं और कहते हैं कि अब देखते हैं सुक्खा अपना बेटा चंदन को कैसे पढ़ाता है? सवर्ण समाज क्यों नहीं चाहता है कि दलितों का कई बच्चा पढ़-लिख कर समाज में आत्मसम्मान के साथ जीवन बिताये। इसका राज ठाकुर हरनाम सिंह द्वारा अपनी

---

33 वही, पृ- 37

34 वही, पृ- 38

बेटी रजनी को कही गई बातों से स्पष्ट किया जा सकता है। रजनी अपनी पिता हरनाम सिंह को समझाने का प्रयास करती हुई कहती है कि “संविधान के अनुसार तो देश के प्रत्येक नागरिक को सम्मान और स्वाभिमानपूर्वक जीने का हक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वेच्छानुसार व्यवसाय चुनने और जीवन की दिशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है। यदि चंदन पढ़-लिखकर कुछ काबिल बनना चाहता है तो यह उसका संवैधानिक हक़ है, इस पर किसी को एतराज क्यों होना चाहिए।”[35] आगे वह यह भी कहती है कि ‘जब तक सुक्खा की तरह दूसरे लोग अपनी बच्चों को काबिल बनाने की ओर प्रेरित नहीं होंगे तब तक न देश का उत्थान होगा न समाज का।’ तब ठाकुर हरनाम सिंह रजनी से कहते हैं कि “अकेले चंदन की पढ़ाई-लिखाई से हमें कोई एतराज नहीं है। वह पढ़-लिख कर नौकरी करे ले इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन चंदन की देखादेखि यदि सब चमार-चूहड़े पढ़-लिख जाएँ और सब-के-सब बाहर जाकर नौकरी करने लगेंगे, तो कल को हमारे खेतों और घरों में कौन काम करेगा?”[36] उपन्यासकार कर्दम जी के इस वाक्यांश से यही प्रतीत होता है की सवर्ण लोग नहीं चाहते हैं कि दलितों के बच्चें उच्च शिक्षा प्राप्त करें। क्योंकि अगर वह ऐसा करेंगे तो फिर उनकी जो आराम तलब जीवन-शैली है वह नहीं फलीभूत होगी।

भारतीय ग्रामीण समाज व्यवस्था का यही वास्तविक रूप है जिसे सदियों से वर्ण-व्यवस्था ने सवर्ण समाज को अपने वर्ग-हितों के लिए सहायक सिद्ध हुया। जिसका पोषक पंचायती-राज व्यवस्था है और कथित धर्म ग्रंथ है। जब दलितों ने इस क्रूर सामाजिक-संरचना को तोड़ने की कोशिश की तब सवर्ण की सोची-समझी वर्ण-व्यवस्था का घिनौना चेहरा सामने आ जाता है। जिससे दलितों की सामाजिक जीवन-यापन प्रणाली में बाधा आ जाती है। सुक्खा जैसे पात्र के माध्यम से लेखक ने दिखाना चाहता है कि सदियों से हो रहे अन्याय-अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न, घृणा, अपमान और तिरस्कार के शिकार होने वाले दलितों में स्वाभिमान-भावना जन्म ले चुकी है और उनमें आत्मसम्मान के साथ जीने की इच्छा कायम की। ठाकुर और काणा पंडित द्वारा गाँव से तो पहले से बाहर कर दिया गया था सुक्खा को, भैंस मरी, लगान न दे पाने के कारण अपनी ही जमीन से बेदखल किया गया साहूकार के पास अपनी छोटी सी

[35] वही, पृ- 71-72

[36] वही, पृ- 71

झोपड़ी गिरवी रख दिया, फिर भी हिम्मत नहीं हारी, मेहनत से कमाने लगा। अपनी पत्नी द्वारा सुझाया जाना कि ठाकुर, साहूकार से लगने से कौन आज तक खुशी से जिया है, तुरंत सुक्खा उसी आत्मविश्वास से कहता है "चुप रह रमिया! मत ले उन जाहिलोंका नाम मेरे सामने, जो मेरे बेटे का जीवन बर्बाद करने पर तुले हुए हैं। मैं मर जाऊंगा भूखा प्राण तज दूँगा, सब कुछ बर्दाश्त कर लूँगा मैं, पर चन्दन को इस नर्क में नहीं पड़ने दूँगा कभी, जिस नर्क में मुझे रहना पड़ा है। तू अपना काम देख रमिया...।"[37] इससे सुक्खा के मन में सवर्ण के प्रति विद्रोह की भावना दिखाई देता है।

रचनाकार जयप्रकाश कर्दम ने 'छप्पर' उपन्यास की कथा-संरचना को अंबेडकर विचारधारा से विकसित करने की कोशिश की है और कई मायनों में इसमें वो सफल भी हुए हैं। इसकी कथा दो स्तर से चलती है एक ग्रामीण और दूसरा शहरी फिर भी उपन्यास की दोनों कथानक शृंखलाबद्ध दिखाई देते हैं चूंकि इसकी कथा एक दूसरे से ऐसी गूँथी हुई है जो बोझिल नहीं लगती।

चंदन जब गाँव से शहर पढ़ने आया तो उसके मन में एक कल्पना थी कि शहर की जीवन शैली गाँव के गंदेपन से भिन्न साफ-सुथरी होगी। वहाँ न तो गाँव की तरह आर्थिक तंगी होगी न रोटी कपड़ा की समस्या न तो छुआ-छूत, ऊँच-नीच जैसे सामाजिक भेदभाव और न ही चोरी डकैती न जीवन की असुरक्षाएँ। परंतु जब वह जे. जे. कॉलनी में हरिया के साथ रहने लगता है तब उसे पता चलता है कि "शहर में भी बहुत से दलित लोग बिना छुकी-भुनी सब्जी खाते हैं या केवल पानी या चाय के साथ नमक की रोटियाँ गले से नीचे उतारकर जिन्दा रहते हैं।... यहाँ भी तन ढकने को कपड़ा नहीं है बहुत से लोगों के पास। यहाँ भी गाँवों की तरह बच्चे रेत-मिटटी में खेलते नंगे घूमते हैं।... बहुत सी गर्भवती औरतों को फुटपाथ पर ही खुले आकाश के नीचे बच्चे पैदा करने पड़ते हैं।"[38] गाँव और शहर के बीच सिर्फ 'कॉलनी' शब्द ही है जो विभाजन की रेखा खींचती है अन्यथा गाँव के गारा-मिट्टी या घास-फूस के छप्पर और शहर के झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले लोगों में कोई अंतर नहीं। यह एक विवशता या त्रासदी ही कह सकते हैं उनकी जीवन

---

[37] वही, पृ- 39

[38] वही, पृ- 12-13

की जिसे व अपना नियति मान बैठे हैं। गाँव में इन दलितों का शोषण ठाकुर, साहूकार मिलकर करते हैं और शहर में पूंजीपति वर्ग।

संतनगर शहर के जिस झोंपड़-पट्टी में चंदन रहता है वहां गरीब, मजदूर छोटे-मोटे काम-धंधे जैसे जूते-चप्पल, कागज की टोकरी, मिट्टी के खिलौने और कुछ मिल में काम करने वाले लोग रहते हैं। इन लोगों में न तो मध्यवर्ग की भांति आपाधापी है न व्यवसायिक व्यवहार और न ही छल-कपट। जीवन की मुख्यधार से अलग-थलग पड़े इन लोगों के जीवन में न कोई रस है न प्राण। बस किसी भी तरह जीवन की धार में जुड़े रहते हैं। यूं कह सकते हैं कि "जैसे बहती नदियाँ महासागर में आ मिलती है वैसे ही इनकी जीवन यात्रा भी कहीं महाशून्य में जाकर पूरी हो जाति है।"[39] इनमें कुछ हैं जो जीवन की इस धार को तोड़ना चाहते हैं और कड़ी परिश्रम करते हैं मगर कमाई की आधा हिस्सा जब दारूबाजी में लूटा कर साम को घर पहुंचते हैं तब ये मन की दमित भावनाओं को बाहर निकालने के लिए लड़ते-झगड़ते और चिल्लाते रहते हैं जिससे चंदन का दम घुटने लगता है वह वहाँ से भागना चाहता है, लेकिन भाग नहीं सकता है।

इसी झोंपड़-पट्टी में हरिया है, रोज शराब पी कर आता है। तमाम कमजोरियों के बावजूद चंदन आत्मीयता के साथ उसके घर में रहता है। यहीं से चंदन के जीवन के संघर्ष की नयी यात्रा शुरू होती है। आमतौर पर जून के अंत तक उत्तर-भारत में मानसून आ जाता है लेकिन उस बार नहीं आया तो संतनगर कॉलनी में रहने वाले लोग इन्द्र देवता को प्रसन्न करने हेतु यज्ञ के लिए चन्दा इकट्ठा करने के विरुद्ध चंदन विरोध करता है। लोगों में ब्राह्मणवादी कर्मकांड के विरुद्ध चेतना पैदा करता है। लोगों को समझाते हुए अंधविश्वास को दूर करने का प्रयास करता हुआ कहता है कि "यह मान्यता गलत है कि यज्ञ करने से भगवान प्रसन्न होंगे और तब वर्षा होगी। वर्षा होगी मानसून के आने से। अभी मानसून नहीं आया है इसलिए वर्षा नहीं हो रही है।"[40] वह उन्हें यह भी समझाता है कि दुनिया में ईश्वर, भगवान, आत्मा-परमात्मा ऐसी कोई भी सत्ता नहीं है। वे सब मिथक हैं, काल्पनिक है जो भोले-भाले लोगों को बेवकूफ बनाने के लिए सत्तासीन लोगों द्वारा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ईजाद किया गये है।' आगे जाकर चंदन प्रश्न करके समझाते हुए कहता है "तो इसका मतलब यह हुआ कि आज जो तुम्हारी ये दीन-हीन

---

[39] वही, पृ- 15

[40] वही, पृ- 19

हालत है, तुम जो रोजी-रोटी के लिए दूसरों के मुहंताज हो और तुमको जो नीच, अछूत मान कर घृणा और उपेक्षा का व्यवहार किया जाता है, तुम जो शोषण, अत्याचार, अपमान का शिकार हो रहे हो इन सब का कारण क्या तुम्हारी ईश्वर है, वही तुम्हारी यह दुर्दशा कर रहा है।"[41] मनुष्य की सत्ता ही सर्वोपरि है। इन वैज्ञानिक तर्कशील और क्रांतिकारी विचारों के साथ चंदन वहाँ के दलितों को शिक्षित और संगठित करके समाज-सुधार आंदोलन का सूत्रपात करता है।

चंदन दलित युवक होने के कारण शहर के कॉलेज में भी जाति की भावना उसे उपेक्षा, त्रासदी और अपमान जनक लगता है। अपनी सहपाठियों द्वारा तिरस्कृत और अपमानित होने के कारण उसने दलित युवकों का एक सर्किल बनाया जिसमें रामहेत, रतन और नंदलाल के अतिरिक्त बाकी सदस्य मिल में काम करने वाले थे। सभी में वैचारिक स्तर पर काफी भिन्नता थी किन्तु एक बात सब में व्याप्त थी वह है शोषण, उपेक्षा और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की प्रबल भावना। जिसने सभी सदस्यों को एक-दूसरे से बांध के रखा था। रामहेत बिजनेस करना चाहता है, नंदलाल वकालत और रतन प्रशासनिक सेवा में जाना चाहता है किन्तु चंदन अपनी शिक्षा का उपयोग अपने दीन-हीन भाइयों की समाज के उत्थान के लिए नियोजित करना चाहता है। दलित समाज अपने सम्मान का भूखा है इसलिए चंदन अपनी साथियों को समझाते हुए कहता है कि "तुम लोग क्या समझते हो कि तुम्हारी वकालत और व्यापर चल जाएँगे? यह तुम्हारी भूल है। जब तक समाज में ऊँच-नीच और छुआछूत का जहर व्याप्त है, जब तक समाज में तुम्हारी निम्न स्थिति है, जब तक तुम्हारी सामाजिक रूप से कोई हैसियत नहीं बनती, तब तक तुम्हारे व्यवसाय चलने की कोई गुंजाइश नहीं है।"[42] आगे वह यह भी कहता है कि 'हम सिर्फ सामाजिक रूप से नहीं आर्थिक, राजनीतिक, और शैक्षणिक रूप से प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। वह रामहेत को समझाता है कि "यदि तुम्हारी सामाजिक हैसियत है तो तुम्हारे लिए हर कहीं गुंजाइश हो सकती है। यदि तुम्हारी कोई सामाजिक हैसियत नहीं है तो चाहे तुम कोई भी काम कर लो, कितना भी धन कमा लो उस सबका कोई महत्त्व नहीं है। पैसा भी जीवन का एक

[41] वही, पृ- 21

[42] वही, पृ- 41

फैक्टर है, मैं इससे इनकार नहीं करता लेकिन इससे पहले जरूरी है समाज में तुम्हारी हैसियत का होना।"[43] इससे यही प्रतीत होता है की जब तक समाज में वर्ण-व्यवस्था जैसी घृणित प्रथा रहेगी तब तक दलितों को सामाजिक हैसियत नहीं मिल सकती।

इस उपन्यास में दलित जीवन का यथार्थ को ही शब्द बद्ध करके सिर्फ चित्रित करना ही उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं है। बल्कि उनमें नए सोच और प्रतिबद्धता को एक दिशा देने की कोशिश भी करता है।

'साहित्य का प्रयोजन मनुष्य को संकीर्णता और मोह से उठाकर उदार, विवेकी और सहानुभूतिपूर्ण बनाता है।' अतः किसी भी समाज में हो रहे परिवर्तन का सबसे पहले साहित्य में दिखाई देती है। साहित्य किसी भी समाज की आंतरिक व्यथा, संघर्ष, यातना और उसकी जीवन दृष्टि का प्रामाणिक संवाहक बनता है।

जयप्रकाश कर्दम जीवन दर्शन और विचारधारा में दलितों के लिए शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए बताते हैं कि शिक्षा से ही सोये हुए दलितों में जागृति आएगी, जिससे वे अपने शोषण के बेड़ियाँ को काट पायेंगे। बिना शिक्षा के दलित समाज के लोगों की मूक जबान को न वाणी मिलेगी न मुक्ति। चूंकि पढ़ेंगे नहीं तो कैसे जानेंगे देश-दुनिया को और कैसे करेंगे अपनी हक और उत्थान की मांग? इसलिए चंदन पढ़ाई के साथ-साथ संगठन बनाकर सघर्ष पर जोर देते हुए दलितों को सम्बोधित करता हुआ कहता है "हमे समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना है। एक-दो आदमी के बस का नहीं है यह काम। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इस सबके लिए फौज चाहिए, वह फौज तैयार करूंगा मैं।"[44]

इससे ऐसा लगता है लेखक ने अंबेडकर के जीवन-दर्शन और विचारधारा को क्रियान्वित करने के लिए चंदन जैसे कर्मठ तथा अपने सिद्धांत पर दृढ़ चरित्र का अंकन किया है। दलितों की असमानता, विषमता और शोषण के लिए समाज और धर्म-शास्त्र को दोषी मानता है। इस बात

---

[43] वही, पृ- 42

[44] वही, पृ- 44

की पुष्टि के लिए चन्दन द्वारा साधारण लोगों को समझाता हुआ यह कथन देखा जा सकता, जिसमें वह कहता है "यह समाज धर्म द्वारा प्रेरित और संचालित है, हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है। 'धर्म ग्रंथ ही हमारे शोषण और अत्याचारों की जडें हैं। इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है।"[45] चंदन सदियों से अज्ञान के कारण पिछड़ेपन की गर्त में पड़े दलित समाज को जगाना चाहता है। उनकी सामाजिक उत्थान और विकास के लिए कटिबद्ध होकर हर तरह के त्याग के लिए उत्सुक है 'यदि मेरे प्रयास से पददलित समाज का भला हो सकता है तो, मैं स्वयं को धन्य समझूँगा और उसके लिए खुशी-खुशी अपना सब कुछ त्यागने को तैयार हूँ'। चंदन की इस त्याग पूर्ण कार्य करने की दृढ़ इच्छाशक्ति से प्रेरणा लेकर दलितों ने संकल्पना ली की वे सभी अपनी अपनी व्यसन छोड़ देंगे और चाहेंगे की उनके बच्चे भी समाज में बाकी मनुष्य की तरह समता और स्वाभिमान तथा आत्मसम्मान के साथ जियें। यह वह बिन्दु है जहां से लेखक अपनी लक्ष्य की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है और उसका एक मात्र लक्ष्य है जातिविहीन-वर्गविहीन समाज की स्थापना। उसके इस लक्ष्य को साधने के लिए कमला और रजनी जैसी संघर्षशील नारी पात्र की सृष्टि की गई है।

विशेषाधिकार प्राप्त जातियों के पुरुषों को अछूत महिलाओं के जिस्म पर अविवादित अधिकार हासिल है। प्रेम प्रदूषित करता है, लेकिन बलात्कार पवित्र है। भारत के कई हिस्सों में आज भी यह जारी है।

कमला और रजनी इन दोनों पत्रों के आने से उपन्यास की कथा-संरचना में एक नया मोड़ आता है। हरिया की बेटी कमला एक बलात्कार पीड़ित दलित स्त्री है। जिसे इस व्यवस्था से न्याय नहीं मिलता है। उसे उस सामूहिक बलात्कार से एक बच्चा भी होता है जिसका नाम खिलाड़ी/खिल्लर है। पहले वह सोचता था कि 'इस गंदगी को कहीं फेंक दे लेकिन ममता की मोह ने उसे रोक लिया है।' वह उसे इसलिए पढ़ाना चाहती है ताकि 'बड़ा होकर वह उसके साथ हुए जुल्म और अत्याचार का बदला ले सके यही उसकी कामना है।' कमला जब चंदन के द्वारा खोले गए स्कूल में अपने बच्चे का नाम लिखवाने आती है तो बाप के नाम की जगह भी वह अपना ही नाम बताती है। वह इस पुरुष वर्चस्व प्रधान समाज में प्रश्न खड़ा करती है कि क्या बच्चे के

---

[45] वही, पृ- 45

पहचान के लिए बाप का नाम आवश्यक? क्यों सिर्फ माँ का ही नाम किसी बच्चे की पहचान के लिए पर्याप्त नहीं है?

कमला की व्यथा-कथा सुनकर चंदन को उसके प्रति सहानुभूति हुई और कमला में एक नई चेतना जाग्रत हुई जिसे उसको पहली बार नारी-शक्ति का आभास हुआ। अब तक उसे लगता था कि असमानता, अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने वाला वह अकेला है। इससे उसमें निराशा होती थी लेकिन कमला की हौसले को देख कर उसे लगा कि वह अकेला नहीं है। उसने जीवन में पहली बार कमला के रूप में नारी-शक्ति को पहचाना। कमला इस उपन्यास की ऐसी सजीव और जीवंत नारी चरित्र है जो स्वावलंबी और आत्मसम्मान के साथ जीना चाहती है साथ ही दलित स्त्रियों के उत्थान के लिए संघर्ष करती नजर आती है।

कमला जहां अपनी वर्गीय-चेतना लिए उपन्यास में उपस्थित है वही दूसरी तरफ रजनी अपनी सामंती मूल्यों और संस्कार का परित्याग करके सहानुभूति के साथ सर्वहारा वर्ग में शामिल हो कर मातापुर के ब्राह्मणों-सामंतों के गठबंधन के खिलाफ, दलितों की सामाजिक सम्मान के लिए लड़ाई करती है। वह मानती है कि गाँव से दलितों के पलायन के पीछे का कारण ठाकुर, ब्राह्मण, सामंतों के शोषण और अत्याचार है। सबसे पहले वह अपने पिता हरनाम सिंह का विरोध करती हुई उन्हें दलितों के समानतावादी और मानवतावादी आंदोलन से परिचय कराती है कि “लेकिन अपने स्वार्थ की दूसरों को बलि बनाना तो उचित नहीं है। किसी को मुर्ख बनाकर, धोके में रख कर किसी का भी अधिक समय तक शोषण नहीं किया जा सकता। व्यक्ति हो या वर्ग, सब स्वतंत्र और स्वावलंबन जीवन जीना चाहते हैं, अभाव और शोषण का जीवन कोई जीना नहीं चाहता।’ समय करवट ले रहा है, लोग अपने अधिकार के प्रति जागृत हो रहे हैं। दलित शोषित लोग अन्याय और शोषण की जंजीर से मुक्त होने के लिए छटपटाने लगे हैं।”[46] इसका सबूत सुक्खा के विद्रोह से लगाया जा सकता है कि शहरों में हो रहे सामाजिक बदलाव धीरे-धीरे गाँव में भी फैलने लगता है। रजनी, ठाकुर साहब को समझाने की कोशिश की कि अगर वे अपनी सामंतवादी मनोवृति और संस्कार को नहीं छोड़ेंगे तो एक दिन ये लोग अन्याय, अत्याचार और शोषण के जंजीर को स्वयं उखाड़ फेकेंगे। उस समय ये लोग हिंसा पर

---

[46] वही, पृ- 71

भी उतर सकते हैं। चूंकि इतने बड़े समुदाय के आक्रोश को दबा पाना मुश्किल है उस स्थिति में आपको बहुत ज्यादा हानि उठानी पड़ सकती है।

सवर्ण समाज सदियों से अपनी अस्मिता को लेकर बहुत चिंतित दिखाई देता है जो कि उपन्यास में कर्दम द्वारा दिखाया गया है। जिसके लिए वह परंपरा की दुहाई देने से पीछे नहीं हटता पर दलितों के अस्मिता के लिए सोचते हुए नहीं दिखाई देते। ठाकुर हरनाम सिंह अपनी सामंती-संस्कार और सामंती मनोवृति को छोड़ने को तैयार नहीं है, बल्कि सामंती अस्मिता की बात करता है "इतिहास और परंपरा से समाज में हमारा वर्चस्व रहा है। हमारा वर्चस्व कायम रहे हमारी अस्मिता इसी में है। अस्मिता के बिना आदमी जिंदा नहीं रह सकता।"[47] लेखक ने फिर एक बार रजनी के माध्यम से दलितों के अस्तित्व के सवाल को सवर्ण के सामने रखते हुए कहा कि "अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए आप इतने चिंतित हैं। लेकिन जिनका आप दमन कर रहे हैं उनके बारे में सोचा है कभी। उनकी भी तो कुछ अस्मिता होगी। आप उस ओर देखने की कोशिश क्यों नहीं करते। क्या वे मनुष्य होने लायक भी नहीं? जो आप अपने लिए चाहते हैं वह सब उनको नहीं मिलना चाहिए?"[48] भारतीय उपमहाद्वीप में जातिगत भेदभाव से उभरे इसी गैर-बराबरी को दलित साहित्य अपना उपजीव्य विषय समझता है जिससे वह छुटकारा पाने और अपने संवैधानिक अधिकारों के लिए दलितों को केंद्र में रखकर रचना करता है।

ठाकुर हरनाम सिंह की तरह सेठ दुर्गा दास, पंडित श्रीराम शर्मा, जिला कलक्टर और पुलिस अधीक्षक दलितों द्वारा चलाए गए साम्यवादी आंदोलन को समानता के नाम पर अराजकता फैलाना कह कर उसकी शक्ति को पहचानना नहीं चाहते हैं। दलितों के इस समानतावादी आंदोलन को दबाने के लिए पंडित श्रीराम शर्मा द्वारा दिए गए तर्क का स्पष्टीकरण से साफ झलकता है जब वह कहते हैं कि "सनातन व्यवस्था है, यह तो रहेगी ही। धर्मशास्त्र से भी बड़ा कोई हो सकता भला।"[49] इस अपरिवर्तनवादी ताकतों के विरुद्ध रजनी साम्यवादियों का समर्थन करती है 'यह सारी व्यवस्थाएँ मनुष्य द्वारा बनायी गई है यदि

---

[47] वही, पृ- 73

[48] वही, पृ- 73

[49] वही, पृ- 83

व्यवस्था दोषपूर्ण है और वह उत्थान के जगह पतन का कारण बनती है तो उसका परित्याग करना ही श्रेयस्कर है तथा उसको बदला जा सकता है और बदल जाना ही चाहिए।'

ठाकुर हरनाम सिंह अपनी पूर्वाग्रहता के कारण ये मानने को तैयार नहीं है कि उन्होंने दलितों के ऊपर कोई जुल्म किया है उनका शोषण और उत्पीड़न किया है; उनको लगता है उन्होंने तो सिर्फ परंपराओं का पालन किया है, व्यवस्था के साथ जिया' है, वे क्यों दलितों से माफी मांगे। जबकि रजनी दलितों से माफी मांग कर उनके आक्रोश को कम करना चाहती है और कहती है कि 'हमारा अस्तित्व उनकी स्वीकृति में है। यदि हमने प्रायश्चित नहीं किया, उनसे माफी नहीं मांगी तो समाज के बीच जीना कठिन होगा हमारा।' अंततः रजनी के प्रयास से ठाकुर हरनाम सिंह का हृदय-परिवर्तन होता और वह अपनी सामंती संस्कार को त्याग कर अगले ही दिन पंचायत बुलाकर अपने गुजारे लायक जमीन रख कर बाकी गाँव के भूमिहीन दलितों में बाँट देते हैं और साधारण लोगों की तरह महल त्याग कर कुट्टिर/कुटी में जीने लगते हैं। इस प्रकार मातापुर गाँव में सामंजस्य स्थापित हो जाता है, जातिवाद का दंशखत्म हो जाता और शोषण-उत्पीड़न खत्म करके भातृत्व-भाव से समानता के साथ जीने लगते हैं। सामंती सोच रखने वाले ठाकुर भी मनुष्य के पैरोकार बन जाते हैं और कहते हैं "मनुष्यता ही हमारा गोत्र हो, मनुष्यता ही हमारी जाति और मनुष्यता ही हमारा धर्म हो।"[50] आगे सुक्खा से कहते हैं कि तुम मुझे ठाकुर न बुलाकर हरनाम ही बुलाना। इस तरह से लेखक ने फुले और अंबेडकर के वैचारिकता के साथ उपन्यास का अंत करके हृदय परिवर्तन दर्शन को भी दलित के हित में दिखाने की कोशिश की है। किन्तु ऐसा लगता है कि यह सिर्फ साहित्य में ही संभव है हक़ीकत में हृदय परिवर्तन एक कल्पना है जो कर्दम ने अपने आदर्श समाज के 'यूटोपिया' को माना है।

जाहिर-सी बात है कि दलित साहित्य का उद्भव ही संघर्ष और आंदोलन से हुआ है। साथ ही उनकी जीवन जीने की प्रणाली भी संघर्षपूर्ण रही है, चाहे वह गाँव हो या शहर कमोवेश दलितों को हमेशा तथाकथित सवर्ण द्वारा अन्याय, अत्याचार, शोषण, प्रताड़ना आदि झेलनी पड़ती है। चाहे पानी का प्रश्न, मंदिर प्रवेश का प्रसंग हो या कहिए आर्थिक, शैक्षिक, राजनीतिक कहीं-न-कहीं दलितों को हमेशा अन्याय से गुजरना पड़ता है। उसके आत्मसम्मान से जीने का

---

[50] वही, पृ- 122

रास्ता अवरुद्ध कर दिया जाता है। उसे मजदूर बनने के लिए विवश कर दिया जाता है। इन सब सामाजिक असमानताओं से मुक्ति या छुटकारा पाने के लिए संघर्षों की जरूरत है साथ ही उत्तम विचार। जिसको उपन्यासकार बखूबी निभाते हुए दिखाई देते हैं। उपन्यास की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाला नायक चंदन के अगुवाई में समाज में समानतावादी आंदोलन की चिंगारी गाँव-गाँव शहर-शहर तक फैल जाता है। जहाँ-जहाँ यह सामाजिक क्रांति और बदलाब की हवा पहुंची वहाँ पर तथाकथित निम्न वर्ग और अवर्ण लोगों ने केवल सवर्ण की सामाजिक श्रेष्ठता को ही सिर्फ मानने से इनकार नहीं किया, बल्कि ब्राह्मणवाद, पूंजीवाद और सामंतवाद का भी खुल कर बविरोध किया। जिसका परिणाम यह निकला कि जन्म के आधार पर व्यक्ति को श्रेष्ठ या हीन मानने की भावना का लोप होने लगा। उसके स्थान पर व्यक्ति का गुण-कर्म तथा योग्यता के आधार पर ही मनुष्य को श्रेष्ठ या हीन समझना बलवती बना रहा। जिससे पंडा, पुरोहित, साहुकारों के परंपरागत व्यवसाय को झटका लगा और वे अपने पुश्तैनी कारोबार छोड़कर दूसरे धंधे अपनाने शुरू कर दिए। जिससे चारों ओर अमन और शांति का वातावरण फैल गया। वर्ण-व्यवस्था की चूल्हें ढीली पड़ने लगी, लोग आपस में मिल-जुल कर मान-सम्मान और भाई-चारे के साथ रहने लगे। यह उपन्यासकर की सिर्फ सामाजिक क्रांति ही नहीं बल्कि साहित्यिक क्रांति भी कही जा सकती है। ऐसा करके कर्दम ने यहाँ पर कबीर दास के अमरपुरा, रैदास के बेगमपुरा और कार्लमार्क्स के साम्यवाद जैसी 'सामाजिक- यूटोपिया की परिकल्पना' की है। जिसके लिए उन्होंने बुद्ध, फुले, आंबेडकर और मार्क्स को एक छतरी के नीचे दिखाने की कोशिश की है।

उपन्यासकर जयप्रकाश कर्दम ने गौतम बुद्ध के अहिंसा तत्व के साथ-साथ फुले और आंबेडकर की वैचारिकी को लेकर चंदन के जरिए समाज में क्रांति तथा बदलाव करना चाहते हैं परंतु आक्रोश तथा हिंसा से नहीं प्रेम से जिससे उनकी विचारधारा स्पष्ट दिखाई देती है। उसका जीवन-दर्शन बताता है कि 'वह परिवर्तन चाहते हैं लेकिन हिंसा का जवाब हिंसा नहीं' अहिंसा और प्रेम से देना चाहिए। आगे वे कहते हैं कि सजा कोई समधान नहीं है सजा के बजाय व्यक्ति में सुधार का प्रयास करने की जरूरत है जिसे व्यक्ति को अपनी गलती का अहसास हो जाए और वह अपनी गलती को सुधार ले इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है? समानता के लिए आन्दोलन की आवश्यकता है। समानता के विरोधी-पक्षों के प्रति विरोध को दर्शाया गया है। जब चंदन द्वारा लोगों को समझाया गया कि "हम व्यवस्था के विरोधी हैं व्यक्ति के नहीं। हमारी

लड़ाई व्यवस्था के खिलाफ है, किसी व्यक्ति से कोई द्वेष नहीं है हमें। यदि कोई व्यक्ति इसमें बाधक होगा तो उसका भी विरोध अवश्य किया जाएगा, फिर वह चाहे कोई भी हो।"[51] आगे जाकर बात को थोड़ा और स्पष्ट करने के लिए लिखते हैं कि "हम न्याय और समता के पक्षधर हैं और समानता प्राप्त करने के लिए हमें व्यवस्था को बदलना है क्योंकि हमारी समाज व्यवस्था अन्याय और असमानता को जन्म देने वाली है।"[52] हम विरोध नहीं सामंजस्य चाहते हैं, हम चाहते हैं कि सब लोग अपने विरोध और मतभेद को भुला कर तथा सारे द्वेष मिटा कर परस्पर त्याग और सद्भाव के साथ जियें। एक-दूसरे के दुःख-दर्द में साथ दें। उपन्यासकर उपन्यास के अंत में कबीर, रैदास और मार्क्स के भांति एक आदर्श समाज की परिकल्पना करते दिखाई देते हैं।

इस उपन्यास की शुरुआत तो यथार्थवादी ढंग से शुरू होती है परंतु आखिर में आदर्शोंमुखता दिखाई देती है जबकि उपन्यास को आदर्श से यथार्थवाद की ओर जाना चाहिए था। इसमें लेखक की विरोधाभासी स्थिति दिखाई देती है। इसके बावजूद भी उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि लेखक ने सदियों से सोये हुए दलित समाज को वैचारिक आधार पर संगठित और जागृत करने की कोशिश की है साथ ही अपने अधिकार के प्रति सजग करा के मानवीयता की प्रतिकूल ताकतों के खिलाफ एकजुटता दर्शायी है। उनमें समाज में सम्मान के साथ जीने की ललक पैदा करवायी साथ ही शिक्षा जीवन में कितना महत्त्वपूर्ण होती है उसको रेखांकित किया गया है।

1.2.2. 'भेद' उपन्यास की अंतर्वस्तु

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज में ही वह जीवन जीता है। यदि समाज शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा है। अगर देखा जाए तो साहित्य मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है क्योंकि मनुष्य समाज का एक अभिन्न अंग है। जन्म से मृत्यु पर्यंत मनुष्य समाज से जुड़ा रहता है वह चाह कर भी समाज से अलग नहीं रह सकता है। उसका पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन का निर्वाह समाज द्वारा ही होता है। मनुष्य समाज में रहकर अनेक प्रकार का अनुभव

[51] वही, पृ- 118

[52] वही, पृ- 118

ग्रहण करता है एवं जब वह प्राप्त अनुभव को शब्द द्वारा अभिव्यक्त करता है तो वह साहित्यिक कृति बन जाता है। और यही अभिव्यक्ति की शक्ति उस व्यक्ति को आगे चलकर साहित्यकार बना देती है। अतः जैसा समाज होता है वैसा ही साहित्यकार की रचना होती है और वैसे ही समाज की झलक उस साहित्यकार के रचना में देखने को मिलती है। साहित्य एवं समाज का संबंध युगों-युगों से देखा गया है दूसरे अर्थ में कहे तो साहित्य एवं समाज एक ही सिक्के के दो पहलू एवं एक दूसरे के पूरक भी हैं।

आजादी के बाद ओड़िया साहित्य में दलित चेतना, दलित-विमर्श का साहित्य लिखा गया है, जिसमें वर्ण-व्यवस्था के जातिगत तिरस्कार, अपमान, आर्थिक-शोषण, शारीरिक-मानसिक शोषण, भूख और गरीबी का चित्रण उनकी रचनाओं में होने लगा है। गैर-दलित लेखक कथाकार गोपीनाथ मोहान्ती के उपन्यास 'हरिजन' और कहानी 'पिम्पुडी', 'पालभूत', आहुति' आदि प्रमुख है। जिसमें उन्होंने दलितों के दुख-दर्द उनके सरल विश्वास, परंपरा और रहन-सहन के साथ-साथ सामाजिक प्रतिक्रिया को भी दिखाने का प्रयास किया है। श्रीमती शांतिप्रिय जेमा कृत जीवनी पुस्तक 'डॉक्टर बाबासाहेब अंबेडकर', उपन्यास 'मनमणिष', कालन्दी बेहेरा कृत 'देवकन्या' और नरसिंह साहू कृत 'हेडमास्टर' जैसे उपन्यासों में दलित प्रसंग सामने आते हैं। सही मायन में दलित उपन्यासों की शुरुआत नब्बे के दशक से शुरू होती है। उस समय दलित साहित्य को लेकर तरह-तरह के आलोचनाएँ और पुरजोर विरोध भी किया जा रहा था। किसी को इसमें जातिवाद दिखाई दे रहा था तो किसी को सामाजिक एकता खंडित होती दिखाई दे रहीथी। इन्हीं विपरीत परिस्थिति में हिन्दी में जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि ओड़िया में अखिल नायक जैसे दलित रचनाकारों ने पहली बार दलितों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक अस्मिता को लेकर दलित उपन्यासों की सशक्त आधारशिला रखी। देखा जाए तो दलित लेखकों द्वारा दलित उपन्यासों को बीसवीं सदी के अंतिम दशक में और इक्कीसवीं सदी के पहले दशक में प्रकाशित पाया जाता है। आजादी के बाद ओड़िया दलित साहित्य में सामाजिक न्याय की खोज के एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में दलित रचनाकार अखिल नायक कृत 'भेद' उपन्यास प्रमुख रूप से सामने आया है। जिसको पहला ओड़िया दलित उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है। यह पहला ओड़िया उपन्यास होने के कारण तत्काल हमारे सम्मुख सवाल आता है की क्यों और क्या वजह रही है जो ओड़िशा में एक दलित को उपन्यास लिखने में इतना

समय लगा? प्रश्न का उत्तर निहित है, शायद ओड़िया या भारतीय जातीय समाज की संरचनात्मक व्यवस्था या समस्या, जो आदिवासियों, दलितों और महिलाओं के खिलाफ भेदभाव करती है। अखिल नायक का ‘भेद’ उपन्यास का मुख्य विषय जाति आधारित हिंसा है। इसमें मानवीय भाव और एहसासों का स्पर्श है ,वे इस उपन्यास के माध्यम से ब्राह्मणों, पुरोहितों और जमींदारों की खोखली मानसिकता को रेखांकित करने की कोशिश करते हैं जो हमारे समाज को खोखला बनाने के लिए सक्रिय हैं।

सबसे पहले जिस चीज ने ध्यान आकर्षित किया वह है उपन्यास में वर्णित जाति हिंसा की प्रकृति। इसका बारीकी से अध्ययन किया गया है। ओड़िशा में दलितों द्वारा जातिगत अत्याचारों का शिकार होने के बारे में यह छोटी सी उपन्यास बहुत कुछ कहता है। विभिन्न समयों में सामाजिक विरोध, आंदोलन दलितों द्वारा सवर्ण के विरुद्ध चलता रहा है। हालांकि उपन्यास में जाति के सवालों को संबोधित करने से पहले यह विचार करना जरूरी हो जाता है कि ओड़िशा के नागरिक समाज में जाति कैसे संचालित होती है? इसकी जांच की जानी चाहिए। ओड़िशा में दलित सदियों से उत्पीड़न का शिकार हो रहे हैं खास करके ग्रामीण-क्षेत्र में रहने वाले निरक्षर दलित समुदाय समाज में सबसे अधिक शोषण होने वाले समूहों में एक बन गए हैं। स्वतंत्रता के इतने साल बाद भी कोई नागरिक और अन्य सुविधाएँ नहीं, पढ़ाई उनके लिए अनुपलब्ध रही है जिससे वे अमानवीय परिस्थिति में रह रहे हैं। वे आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक अधीनता तथा राजनीतिक शक्तिहीनता के शिकार हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि ओड़िशा एक सामंती राज्य है जिसमें कई आधुनिक और लोकंतान्त्रिक एजेंसिया परंपरागत शक्ति संरचनाओं को पलट नहीं पाई है। जब हर जगह लोग मानवाधिकारों और सामाजिक न्याय के बारे में बात कर रहे हैं तब ओड़िशा के दलितों के लिए सक्षम नहीं है सामूहिक रूप से अमानवीय जाति प्रथाओं के खिलाफ अपनी आवाज उठाने के लिए वे सामने आए। कई मायने में सामंती होने के कारण ओड़िशा का समाज तथाकथित निम्न कही जाने वाली जातियों के लोगों को भारतीय संविधान में निहित कई नागरिक और लोकतान्त्रिक अधिकारों से वंचित तथा लाभ उठाने की अनुमति नहीं देता है। परंपरागत शक्ति अभी भी ब्राह्मणों, करणों (एक जाति) और खंडायतों के हाथों में हैं यानि की कुछ तथाकथित उच्च जाति कहे जाने वाले समुदाय के पास में है जो दलितों का शोषण और उत्पीड़न करते हैं। परिणाम स्वरूप दलितों की

वास्तविक स्थिति दयनीय है। आज भी वे गाँव के बाहर रहते हैं, भले ही उन्हें कस्बों और शहरों के हर हिस्से में घूमने की अनुमति है, लेकिन गाँव में कई प्रतिबंध है।

अखिल नायक कृत 'भेद' उपन्यास में कालाहांडि जिले के छोटे-छोटे गाँव की स्थितियाँ देखने को मिलती है। जिसमें दिनबन्धु दुरिया नामक एक दलित स्कूल टीचर के बेटे ललटू की कहानी है, जो बाहर निकल कर एक सामाजिक कार्यकर्ता बन जाता है। समाज में फैले छुआ-छूत, ऊँच-नीच, जात-पात तथा भ्रष्ट ऑफिसर और एक व्यवसायी और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली उच्च जाति के वकील का विरोध करता है, जो गाँव में राष्ट्रीय स्वयंसेवक गोष्ठी चलाता है, साथ ही राइस मिल के मालिक सेमी सेठ के खिलाफ निर्धारित मजदूरी न देने को लेकर आंदोलन करता है। रचनाकार ने ललटू के माध्यम से ओड़िशा में प्राकृतिक संसाधानों की कॅार्पोरेट लूट, पर्यावरणीय क्षति और ओड़िशा की संस्कृति के ब्राह्मणीकरण जैसे मुद्दों को भी समाज के सामने लाते हैं।

ओड़िशा में दलितों के लिए शैक्षिक अवसर अभी भी पीछे हैं। परिणाम स्वरूप दलितों के बीच साक्षरता की दर आज भी बहुत कम है। अशिक्षा के कारण कोई सुरक्षित नौकरी नहीं मिलने से ओड़िशा में दलित कई ऐसे संवैधानिक प्रावधानों का लाभ नहीं उठा सकते हैं जो उनकी सम्मान और आत्मसम्मान के जीवन जीने की गारंटी देते हैं। अपनी दैनिक आजीविका के लिए ओड़िशा के दलितों को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। इसलिए अपने उत्पीड़न के खिलाफ विद्रोह का आयोजन करने के बारे में वह नहीं सोच सकता। दलितों की ओर से किसी भी उग्रवादी आंदोलन या विद्रोह को राज्य के तथाकथित उच्च जाति के हिंदुओं के खिलाफ जगह नहीं मिलती है। वे किसी भी तरह से दलितों की सामाजिक-आर्थिक पीड़ा को नकारते हैं। यह केवल इस तथ्य को रेखांकित करता है कि ओड़िशा के दलित, जातिगत उत्पीड़न को सह रहे हैं। समाज अपने को कितना भी आधुनिक क्यों न मान लें पर आज भी समाज में प्रचलित जातिभेद की कठोरता और उसके परिणाम को इस उपन्यास में दिखाया गया है। इस उपन्यास में नायक की असहायता के भीतर भी शोषण के विरुद्ध उसकी आत्मविश्वासपूर्ण विरोध सभी के लिए प्रेरणादायी है।

कालाहांडि ओड़िशा के पश्चिम भाग में स्थित है, जिसकी देश के सबसे पिछड़े जिलों में गिनती की जाती है। यह उपन्यास उसी कालाहांडि जिले में बसने वाले डोम जाति और उस प्रांत में होने वाले विकास के बारे में बात करता है। दिनबन्धु दुरिया एक दलित स्कूल टीचर है। उसका लड़का ललटू एक सामाजिक कार्यकर्ता तथा 'साहाजखोल जंगल सुरक्षा कमिटी' के सभापति है। जो सामाजिक बुराइयोंके खिलाफ खडा होता है। वैसे तो सदियों से दलित समाज के ऊपर उच्च कहे जाने वालों लोगों का वर्चस्व रहा है। जिसका पोषक हमारे धार्मिक ग्रंथ रहे हैं तथा वर्णव्यवस्था आधारित भारतीय सामाजिक संरचना रही है। जब हम दलित रचनाकार अखिल नायक की पुस्तक पढ़ते हैं तब पाते हैं कि ललटू में एक अलग चेतना दिखाई देती है जो डॉ. अंबेडकर, फुले जैसे महान दलित चिंतकों से प्रेरणा लिए हुए प्रतीत होते हैं। वह न केवल एक दलित आंदोलन का आयोजन करता है, बल्कि अन्य मुद्दों से भी निपटता है – उदाहरण के लिए, जंगल जैसे प्राकृतिक संसाधान के संरक्षण के लिए कमिटी बनाता है। जंगल की सुरक्षा के साथ-साथ जो भ्रष्टाचार का हिस्सा हैं, उन्हें भी जाँचने की बात करता है। गाँव में मंदिर प्रवेश को लेकर लैंगिक न्याय भेद-भाव, जातिगत हिंसा तथा गोष्ठी संघर्ष की पड़ताल करता है। इससे पता चलता है कि आज के दलित अपने अधिकारों के लिए कितना सतर्क हैं और अपने सम्मान के लिए लड़ने के लिए तैयार हैं साथ ही समानता के लिए दावा करते हैं- पीड़ित के रूप में नहीं बल्कि एक लड़ाकू के रूप में। यह उच्च जाति के ओडिया लेखकों और अखिल नायक के लेखन बीच बुनियादी अंतर है।

बाया वकील यानी वनबिहारी त्रिपाठी बेहेड़ा गाँव के जमींदार है। एक बार वह एक केस में हार गए, हार-जीत तो सभी क्षेत्र में होती है परंतु वह अपनी जीतने या कहे अहंकारी स्वभाव के चलते इस हार को सहन नहीं कर पाए और अपने गाँव चले आए। उनके पिता शचिकान्त त्रिपाठी कैसे फिरोजपुर गाँव के नया गौनतिया या जमींदार बने यह भी एक कहानी है। कहा जाता है कि फिरोजपुर गाँव के असली गौनतिया यानी जमींदार लोचन हाती था। फॉरिस्टर शचिकान्त त्रिपाठी के पूर्वज वाराणसी या लखनऊ के किसी ब्राह्मण शासन से आकर भवानीपाटना में बस गए थे, भवानीपाटना उनका खुद का गाँव नहीं है। फॉरिस्टर नौकरी करते समय वह साल में छ-सात बार दहंगा, बेहेड़ा, फिरोजपुर आदि जगहों में पेड़ कटवाने आते थे उसी दौरान फिरोजपुर गाँव के जमींदार लोचन हाती के घर में भी उनका आना-जाना होता

रहता था। लोचन हाती को पहले से ही नशा करने की आदत थी जिसकी वजह से खाँसते वक्त उनके मुहँ से रक्त निकलता था। उनकी यह हालत देख कर शचिकान्त त्रिपाठी उनसे कहता है कि "बकरी का घी और बाघ का कलेजा मिलाकर लगातार तीन बार खाने से कलेजा की छेद बुझ जाएगा और वह सोलह वर्ष की यवान बन जाएगा।"[53] सरल विश्वासी 'लोचन हाती शचिकान्त त्रिपाठी के बात को मान कर मोहांती फॉरिस्टर के नाम से दस एकर जमीन गाँव के पुराने जमींदार और कुछ लोगों के सामने लिख देता है।'

पारंपरिक एक गाँव का मुखिया जो कि एक अच्छा व्यक्ति है, ब्राह्मणों के मजाकिया, चालाक रवैये के कारण सत्ता खो देता है। इससे यह भी पता चलता है कि कालाहांडि के स्थानीय लोग कैसे सरल, ईमानदार हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि वहाँ के लोग शायद शिक्षा से वंचित हैं। वे बाहरी लोगों और उनके युद्धाभ्यास का मुकाबला नहीं कर सकते। जिसका फायदा उठाकर शचिकान्त त्रिपाठी वहाँ का नया जमींदार बन जाता है उन्हीं का पुत्र वनबिहारी त्रिपाठी है जो गाँव में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा चलाते हैं।

अखिल नायक स्थानीय इतिहास के हवाले से बताते हैं कि औपनिवेशिक शासन शुरू होने से पहले कालाहांडि जिले में ब्राह्मण नहीं थे। आदिवासियों और नीची कहे जाने वाले जातियों का वहाँ पर वर्चस्व था। यहां तक कि कालाहांडि का राजा भी आदिवासी था। एक समयमें, उन्होंने ब्राह्मणों को अंदर आने दिया। ऐसा माना जाता है कि अधिकांश उत्तरप्रदेश और लखनऊ के ब्राह्मण पहले तटीय ओड़िशा आए और फिर पश्चिमी ओड़िशा की यात्रा की, जहाँ कलाहांडी स्थित है। उन्होंने न केवल अपनी बस्ती बसाया, बल्कि क्षेत्र का विस्तार करके आतंरिक उपनिवेश भी स्थापित किया। तब उच्च-जाति की संस्कृति आयी और जहां बहस शुरू हुई थी; क्या आदिवासी और दलित अपने स्वयं के भगवान की पूजा करेंगे या ब्राह्मणों द्वारा पूजे जाने वाले देवी-देवताओं को विरासत में प्राप्त करेंगे? इस संदर्भ में हम जगन्नाथ संस्कृति को देख सकते हैं। पहले कहा जाता था यह देवता वहाँ के आदिवासियों का था पर धीरे-धीरे ब्राह्मणों ने अपना कब्ज़ा कर लिया और आज दलित आदिवासियों को मंदिर प्रवेश के लिए मना ही कर दिया गया है। जबकि समाज, संस्कृति, साहित्य, भाषा के निर्माण में दलित और आदिवासी हैं।

[53] 'भेद', पृ- 18

उपन्यास का प्रतिनायक बनबिहारी त्रिपाठी जो लगभग संघ विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने वाला व्यक्ति है। वह इतिहास के उसी संस्करण में विश्वास करता है जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ करता है। उस समय ओड़िशा में धर्मांतरण का बोलवाला था जैसा कि उपन्यास से पता चलता है कि 'जैतपुर गाँव में क्रिश्चियन धर्म के प्रचारक आते-जाते रहते हैं और उस गाँव के सात परिवार क्रिश्चियन होने को तैयार हैं। जैसे ही यह खबर आयी वैसे ही बाया वकील यानी बनबिहारी त्रिपाठी ने पहली बार उस गाँव में शाखा खोली और अपने भाषण में कहने लगे कि "हम सब हिन्दू हैं। ब्राह्मण हिन्दू, डोम हिन्दू, गोण्, गौड़, माली, तेली सब हिन्दू हैं। हिन्दू, हिन्दू, भाई-भाई। इसलिए हम सब एक होकर विदेशी क्रिश्चियन और पठान जो हमारे हिन्दू भाईओं को अपना गुलाम बनाने आए हैं। हम हिन्दू इस देश के मालिक हैं, हम क्यों किसी का गुलाम बनके रहे।"[54] वह अपने भाषण में सबको हिन्दू भाई-भाई तो मानते है परंतु जाति के ब्राह्मण होने के नाते अपनी पूर्वाग्रस्तता के चलते डोम, माली और गौड़ को हिन्दू नहीं मानते थे। जैसा कि उन्होंने 'दंतेश्वरी राइस मिल' के मालिक सोमेन अग्रवाल से कहते हैं कि 'अंबेडकर का नाम सुने हो तब सेमी सेठ कहता है हाँ जिसने संविधान लिखा है।' उनकी यह बात सुन कर विद्रूप भरी हँसी के साथ कहता है कि "संविधान ना घोडाडिम्ब है वह। उसकी जाति क्या है जानती हो? महार। महार यानी हमारे यहाँ के डोम-घासी जैसे, बैसे है। महार जो डोम वही समझे? सिर्फ स्थान-भेद का अंतर के कारण नाम अलग है।"[55] आगे वह अपनी बात जोड़ते हुए यह भी कहते हैं कि "एक बार हमारी सरकार शासन में आ जाने दो देखना हम उस महार द्वारा लिखा गया संविधान को गोबरगोदा में फेंक देंगे। और ऐसा आईन/नियम बनायेंगे की तुम्हारे मिल में कभी ताला नहीं लगेगा।"[56] यहाँ पर राजनीतिक रूप से बनबिहारी त्रिपाठी यथास्थितिवादी और प्रतिक्रियावादी सरकार के प्रतिनिधित्व के रूप में दिखाई देता है। वास्तव में बनबिहारी त्रिपाठी वह व्यक्ति है जो ओड़िशा में क्या हो रहा है? क्या नहीं? उसका प्रतिनिधित्व करता है। एक तरह से वह विचारणीय चरित्र है जो ओड़िशा के हर गाँव में दिखाई देगा।

---

[54] वही, पृ- 21

[55] वही, पृ- 53

[56] वही, पृ- 53

बनबिहारी त्रिपाठी और नायक ललटू के बीच कोई दुश्मनी नहीं है जैसा की उपन्यास की शुरुआत से पता चलता है। बनबिहारी त्रिपाठी 'जाति के ब्राह्मण और वर्ण-व्यवस्था के अनुसार सभी जातियों में श्रेष्ठ जाति है और ललटू भवानीपाटना गवर्नमेंट कॉलेज में युक्त दुई पढ़ने वाला अपरछनिया यानी जाति के अछूत, प्राइमेरी स्कूल के टीचर दिनबन्धु दुरिया का लड़का।' बनबिहारी के दोनों लड़के जहाँ बड़े-बड़े सरकारी नौकरी में हैं वहीं ललटू पढ़ाई छोड़ने के बाद वावना भूत यानी साहाजखोल जंगल सुरक्षा कमिटी के सभापति। 'बाया वकील सुमेरु है तो ललटू कुमेरु।' इन दोनों का झगड़ा दूसरे तरह का था। हर दिन की तरह साहाजखोल जंगल सुरक्षा कमिटी के सदस्य ने ओड़िशा में प्राकृतिक संसाधान की कॉर्पोरेट लूट और पर्यावरणीय संकट की रोक-थाम का काम करते आ रहेथे। धरमगड़ के कपड़ा दोकनी भजसाहू के लकड़ी भोरी बैल गाड़ी के साथ-साथ वनबिहारी त्रिपाठी के लकड़ी-पट्टा से भरे ट्रेक्टर को अटका कर रख लेते हैं। जिनके पास प्रशासनिक, आर्थिक और सामरिक शक्ति है वह चाहेंगे तो जेल भेजवा सकते हैं। जैसा कि ललटू के एक दोस्त कहता है "तुम क्या बाया वकील को नहीं जानते हो? साला हाबिलदार, थानाबाबू सब उसके हाथ में है।"[57] किन्तु ललटू लकड़ी-पट्टा भरा ट्रेक्टर को छोड़ने को राजी नहीं होता है और छोड़ता भी नहीं। यही सच्चाई है कि प्रतिष्ठित लोग मुनाफे के लिए प्राकृतिक संसाधनों की लूटपाट करते हैं। गरीब अपने प्राकृतिक संसाधनों को अपने अस्तित्व के लिए बचाता है।

दूसरा कारण, दलित लड़की मंजुला और जैतपुर जमींदार दनार साहू के भतीजा युवराज को लेकर है। बनबिहारी त्रिपाठी द्वारा खोली गई शाखा में युवराज ललटू को एक चिट्ठी देकर मंजुला को देने को कहता है। अगले दिन जब ललटू आकर कहता है कि उसने चिट्ठी नहीं दी है तो दोनों में झगड़ा होता है और यह झगड़ा दो ग्राम की दो गोष्ठी में विकराल समस्या बन जाती है, परिणाम स्वरूप ललटू के पिता को दूसरे गोष्ठी के लोग युवराज को अपने जाति में लेने के लिए आर्थिक शोषण करते हैं।

बेहेड़ा 17/11 दंतेश्वरी राइस मिल के श्रमिकों ने सरकार द्वारा अणकुशली/अकुशल श्रमिकों के लिए निर्धारित किए गए 25 रुपए मजदूरी न देने को लेकर मिले के सामने आंदोलन का

---

[57] वही, पृ- 34

पाँचवा दिन है और मालिक सोमेन अग्रवाल का उनसे आंदोलन वापिस लेने के लिए निवेदन। इतना लिख कर ललटू रुक जाता है, उसके लिए उनका पाँच साल पहले पट्टा-व्यापार, तीन साल पहले तेन्तुली-निम्ब-महुआ और झूना-लाख गोदाम में ताला पड़ गया था और अब तीस लाख की राइस मिल तीन दिन से बंद है। जिसका जिम्मेदार वह ललटू को समझते हैं, उन्होंने अपने मिल खुलवाने के लिए बनबिहारी त्रिपाठी के पास जाता है और कहता है कि "पिछले साल जिन लड़कों को भड़का कर आपका लकड़ी भरा ट्रक को जब्त किया था उस वक्त उसे बिना सबक सिखाए छोड़ दिए इसलिए अब इतना उड़ रहा है न? ऊपर से संवाददाता होने के कारण उसके पूछ में हथ नहीं दे सकते हैं...।"[58] उनका यह बात सुन कर विद्रूप भरे स्वर में बनबिहारी त्रिपाठी कहता है "सं-वा-द-दा-ता! क्या फालतू संवादिक है? इधर-उधर से सच-झूट जोड़ कर दो लाइन क्या लिख दिया वह है सांवादिक! ठीक है तू अपने घर में संवाददाता बने। तो क्या गुरुजनों की बात नहीं मानेगा?"[59] वे सोचते थे कि अपनी मुंशी लब को इलेक्शन में खड़ा करके महाभारत जमाएंगे परंतु वैसा हुआ नहीं क्योंकि ललटू और उनके साथी मिलकर रघु मेहेर को खड़ा करते हैं। जिस दिन वह सरपंच की कुर्सी के लिए माला पहन कर पंचायत जा रहा था उस दिन बेहेड़ा के शास्त्री चौक में उसकी धुलाई हुई थी। इस काम के लिए सेमी सेठ ने गाँव के कुछ शराबियों को दो हजार रुपए दिया था। बात अदालत तक गई पर सेमी सेठ का कुछ नहीं हुआ है। इससे उपन्यासकर अखिल नायक ने अंबेडकर की वैचारिकी से प्रेरित होकर अपने लिए अधिनायक की बात करते हुए दिखाई देते हैं और साथ ही यह भी दिखाते हैं कि कैसे उच्च जाति के लोग मिलकर दलितों का शोषण करते हैं।

ललटू की धार्मिक आलोचना दिलचस्प है। वह तर्कवादी रुख को अपनाता है, वह न केवल हिंदू धर्म की आलोचना करता है, बल्कि दलित समुदाय में पूजा के तौर-तरीकों में अंधविश्वास को भी दूर करता है। एक बार ललटू के स्कूल में हेडमास्टर मिश्र महोदय घोषणा करते हैं कि जो सरस्वती पूजा में सबसे ज्यादा चन्दा देगा उसको पूजा में यजमान बनाया जायेगा। ललाटेन्दु दूरिया पंद्रह रुपये देने के लिए जब हाथ उठाया मिश्र जी तात्सल्य/कटाक्ष करते हुए कहने लगे कि "पंद्रह छोड़ पच्चीस भी दोगे तो तुम्हें यजमान नहीं किया जाएगा... हम इंसान जब डोम के

---

[58] वही, पृ- 51

[59] वही, पृ- 51

हाथ से पानी नहीं पीते हैं तो देवी सरस्वती कैसे भोग स्वीकारेंगी?”[60] शिक्षक के मुँह से यह बात सुनकर वह सोचने लगता है और शास्त्र को नकारते हुए कहता है कि इस तरह कि शिक्षा स्कूल में माता सरस्वती ही देते हैं। इसलिए वह गाँव के लोगों से बातचीत करके अपने गाँव के सरस्वती पूजा बंद करवा देता है। पूजा बंद करने के पीछे उसका यही तर्क था कि स्कूल में जब कई धर्म के बच्चे पढ़ रहे हैं तो एक ही धर्म की पूजा क्यूँ की जाए?

मास्टरानी जब ललटू को यह कहती है कि मिश्र जी के बुद्धि खराब है तो वह युक्ति करता हुया कहता है “मिश्र आज्ञा का बुद्धि खराब है कहती हो जो माँ, तो ऐसी खराब बुद्धि वो पाए कहाँ से? उनको वैसा बुद्धि गणेश ही दिए होंगे न? तू तो कहती हो और बाबा कहते हैं गणेश ही बुद्धिदाता है! वैसे बुद्धिदाता का गला मोरड़ देना चाहिए।”[61] दीनबंधु दुरिया के धर्मपत्नी यानी ललटू के माँ एक दलित महिला है वह प्रारंभ में कुछ प्रथाओं में विश्वास करती है जो कि वह उच्च जाति से विरासत में मिली होती है क्योंकि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया-उच्च जातियों की नकल कर रही होती है। वह शुरू में मंदिर जाती है, व्रत रखती है, वगैरह-वगैरह करती है। लेकिन अंत में, वह उस तरह से निंदा करती है जिस तरह से उच्च-जातियों ने उसके साथ व्यवहार किया, जैसे कि उसे गर्भगृह में जाने की अनुमति नहीं थी। यूं तो मास्टरानी एक सपाट चरित्र नहीं है, बल्कि एक गोल पात्र है। अंत में, वह विद्रोह करती है और वह एक मजबूत चरित्र के रूप में उभरती है।

उपन्यासकार अखिल नायक ने उपन्यास में जाति के समस्या की साथ-साथ लैंगिक समस्या को भी दिखाया है। किस तरह एक दलित युवती की मंदिर प्रवेश को लेकरदो गोष्ठी के बीच गोष्ठी संघर्ष होता है। जिसमें गाँव के दलित युवक मुना की दुकान समेत कई घर जला देते हैं और मारपीट में कोई लोग अस्पताल भी पहुँच जाते हैं। गाँव के शिव मंदिर में देव की बहन उर्कुली, कुरूपा के बुआ फेदो को लेकर पुजारी का कहना है कि “डोम जाति को मंदिर प्रवेश मना

[60] वही, पृ- 77

[61] वही, पृ- 78

है।"[62] परोक्ष में एक सवर्ण व्यक्ति द्वारा उनको गंदी-गंदी गाली देने को लेकर दो गोष्ठी के बीच में मारपीट होती है।

शिक्षा के बारे में बताते हुए अखिल नायक ने अंबेडकर के सूत्र वाक्य 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो' उक्ति की सार्थकता बताते हुए कहते हैं। शिक्षा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अब तक की चेतना निर्माण का संबंध शिक्षा रहा है। परंतु आज शिक्षा का बाजारीकरण होने के कारण तथा कथित उच्च जाति के लोग उसे हथियाने में लगे हैं। शिक्षा का उपयोग एक अच्छे उद्देश्य के लिए किया जाना चाहिए चूंकि शिक्षा ही व्यक्ति में जागरुकता और चेतना का निर्माण करती है। इसलिए शिक्षा जरूरी है। आगे वे कहते हैं कि शिक्षा के साथ-साथ राजनीतिक तालमेल भी महत्त्वपूर्ण है। अंबेडकर ने उच्च शिक्षा के कारण वह उच्च कार्यालय में नियोजित हो सकते थे लेकिन वह अपना जीवन और समय दलितों के उद्धार के लिए समर्पित कर दिया ठीक वैसे ही उपन्यास में ललटू भी अंबेडकर की तरह चित्रित किया जाता है शायद यहीं उपन्यासकर अखिल नायक की राजनीति है कि अकले शिक्षा से मुक्ति नहीं मिलेगी। ललटू का चरित्र अंबेडकर की तरह चित्रित किया गया है। जिस तरह से अंबेडकर हिंदू धर्म की आलोचना करते हैं।

कालाहांडि में ही नहीं ओड़िशा के कई ग्रामीण क्षेत्र में अगर आप गांवों में आते हैं, तो आपको आदिवासी और हिंदू का मिश्रण मिलेगा। पेड़ों, सांपों और कुछ जानवरों और पक्षियों की पूजा करना आदिवासियों का संस्कृति है। लेकिन संस्कृतिकरण की एक प्रक्रिया भी है। इसलिए ललटू का चरित्र वास्तव में न केवल हिंदू धर्म बल्कि दलित समुदायों के रूढ़िवाद की आलोचना करने की कोशिश करता है। वह उन्हें जगाने की कोशिश करता है। भारत में इस तरह की पूछताछ की एक लंबी परंपरा है लोकायतन से शुरू होकर दर्शन का एक प्राचीन भारतीय स्कूल जो साम्राज्यवाद और संशयवाद को गले लगाता है।

संतोष पांडा शुरू में ललटू का समर्थन करते हैं क्योंकि वह एक भ्रष्ट सरकारी अधिकारी परमानन्द बाग को अपने गाँव के असहाय व्यक्ति को सरकारी भत्ता दिए जाने वाला पैसा काट लेता था। जिसे पांडा भी नापसंद करते हैं। लेकिन जब वास्तविक आलोचना की बात आती है, तब जब ललटू इतिहास का हवाला देता हुआ कहता है कि ब्राह्मण गोमांस खाते थे, तो वह इस तथ्य को पचा नहीं सकते। ऐसा फुले की 'गुलामगिरी' किताब में भी लिखा गया है कि बौद्ध

---

[62] वही, पृ-58

दर्शन पहले ब्राह्मण गोमांस खाते थे- यह मिथक-निर्माण नहीं है, बल्कि पुस्तकों का हवाला है। इसलिए यह सच्चा चरित्र है -एक ब्राह्मण को ब्राह्मणवाद का समर्थन करना है और इसीलिए ललटू खाई है। ललटू के नाम केस हुआ है सुनकर उसे झूठ-मूठ आश्वसन देकर उससे रिपोर्ट मांगते है तब वह उन्हें रिपोर्ट देकर चला जाता है। उसके दो दिनों बाद 'हस्तक्षेप' अखबार के पहले पन्ने पर लिखा रहता है कि "मंदिर में गाय की हड्डी फेंकने को लेकर गोष्ठी संघर्ष : संवाददाता समेत पंद्रह गिरफ्तार।"[63] अगर आज हम देखें तो बड़े अर्थों में मीडिया दलित विरोधी है। राष्ट्रीय स्तर की बात करें तो जैसे पुलिस दलित, अदालत या कॉर्पोरेट जगत की विरोधी है। दलित मुद्दों पर हम कितना पढ़ते हैं कि सार्वजनिक जीवन के हर क्षेत्र में कुल मिलकर नागरिक समाज का हर हिस्सा शायद दलित विरोधी है। लेखिका अरुंधती रॉय अपनी किताब 'एक था डॉक्टर एक था संत' सीएसडीएस का रिपोर्टर का हवाला देते हुए लिखते हैं कि "सीएसडीएस के एक अध्ययन के अनुसार 1950 से 2000 के बीच सर्वोच्च न्यायालय में 47 प्रतिशत मुख्य न्यायाधीश ब्राह्मण थे। उसी समय-काल में सहायक जज, उच्च न्यायालय और निचली अदालतों में 40 प्रतिशत ब्राह्मण थे। पिछड़ा वर्ग आयोग की 2007 की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत की कार्यपालिका के 37.17 प्रतिशत हिस्से पर ब्राह्मण बैठे हैं। और इनमें से ज्यादातर उच्चतम पदों पर आसीन हैं।"[64] आगे वह पत्रकारिता का रिपोर्ट देते हुए लिखते हैं कि "सन 2006 में सीएसडीएस ने नई दिल्ली मीडिया के अभिजात वर्ग के सामाजिक प्रोफाइल का एक सर्वे किया। इसमें दिल्ली स्थित 37 हिंदी और अंग्रेजी प्रकाशनों और टीवी चैनलों के बड़े फ़ैसले लेने वाले 315 अधिकारियों का सर्वे किया गया। अंग्रेजी भाषा के प्रिंट मीडिया के 90 प्रतिशत निर्णयकर्ता अधिकारी और टेलीविज़न के 79 प्रतिशत अधिकारी उच्च जाति के पाए गए। इनमें से 49 प्रतिशत ब्राह्मण थे। 315 में से एक भी दलित या आदिवासी नहीं था, केवल 4 प्रतिशत उन जातियों के थे जिन्हें शूद्र कहा

[63] वही, पृ- 88

[64] अरुंधती रॉय, एक था डॉक्टर एक था संत, पृ- 26

जाता है, और 3 प्रतिशत मुस्लिम थे।"[65] यही बात अखिल नायक पत्रकार संतोष पांडा के जरिए कहना चाह रहे हैं।

[65] वही, पृ- 27

द्वितीय अध्याय

'छप्पर' और 'भेद' उपन्यासों के पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन

अक्सर ही हम सुनते रहे हैं कि जीवन एक रंगमंच है और मनुष्य उस रंगमंच का एक कलाकार है। जीवन की जिन परिस्थितियों में पड़कर मनुष्य के हृदय में जिन-जिन भावों का समावेश होता है और उनका उसके चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ता है यह लेखक या रचनाकार का विषय है। सफल चरित्र-चित्रण के लिए यह आवश्यक है कि लेखक को मानव मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान हो, अन्यथा वह अपने पात्रों के परिचय में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। उत्तम चरित्र जीवन को सही दिशा में प्रेरित करता है। यह बात गौरतलब है कि चरित्र निर्माण में साहित्य का विशेष महत्त्व माना जाता है। विचारों को दृढ़ता और शक्ति प्रदान करने वाला साहित्य, आत्म-निर्माण में बहुत योगदान करता है। इससे आंतरिक विशेषताएँ जागृत होती हैं। यही जीवन की सही दिशा है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और मानवता के बीच क्या संबंध है इसको दर्शाने के लिए उपन्यासकार पात्रों का सृजन करता है। ये पात्र, समाज की विविध-दृष्टियों और सयोंग को दर्शाते हैं। इनके बीच संघर्ष और उससे जीवन की आस्था को प्राप्त किया जाता है। लेखक को कथावस्तु, पात्र, देशकाल, संवाद योजना या कथोपकथन के साथ अपने लेखन के उद्देश्य को भी स्पष्ट करना होता है। यह उद्देश्य उसकी रचना दृष्टि से जुड़ता है। जिसके लिए वह पात्रों की सृष्टि करता है, अपनी उन्हीं पात्रों के चरित्रों के माध्यम से विचार, इच्छाएँ, आकांक्षाएं और आचरण को दिशा प्रदान करता है।

उपन्यास हो या नाटक, कहानी का मुख्य विषय मानव और उसका चरित्र-चित्रण है पात्रों के चरित्र-चित्रण से कथा का विकास होता है साथ ही उसके कार्यकलापों के द्वारा उपन्यास या उस कृति की सफलता होती है। वैसे उपन्यासकार अपने अनुसार पात्रों का चयन करता है। इस तरह यह मुख्य पात्र और गौण पात्र दो तरह के होते हैं। मुख्य पात्र जहाँ कथा के शुरू से लेकर अंत तक कथानक को गति देने में अपनी भूमिका निभाते हैं। ये पात्र, कथा के नायक होते हैं जिनके इर्द-गिर्द सम्पूर्ण कथा चलती रहती है जिससे कथा लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है। दूसरा, गौण पात्र, मुख्य पात्र का सहायक बन कर आते हैं इसका कार्य कथानक को गति देना वातावरण की गंभीरता का काम करना तथा वातावरण की सृष्टि करना और अन्य पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालना भी होता है।

2.1. भौगोलिक-आधार पर

2.1.1 महागरीय पात्र

कमला : कमला ईंट के भट्ठे पर काम करने वाला हरिया की बेटी, एक दलित लड़की है। वह अपने मालिक और उसके अन्य साथियों के द्वारा सामूहिक बलात्कार का शिकार होती है। एक दिन की बात है कमला अपने लड़के खिल्लर को लेकर चन्दन द्वारा खोले गए स्कूल में नाम लिखवाने के लिए आती है। चन्दन द्वारा खिल्लर के पिता का नाम पूछने पर वह वहाँ से आँखे छलछलाती हुयी चली जाती है। जब चन्दन उसके घर पर जाकर उसको समझाता है कि वह कब तक इस सवाल से भागती रहेगी तब वह हिम्मत करके बोली, "मैं एक दुखियारी हूँ बाबू साहब, मेरे पति नहीं है।"[66] चन्दन ने जब जानने की जिज्ञासा व्यक्त की तो कमला कहती है "उफ़! आपको कैसे समझाऊं बाबू साहब कि मेरी शादी नहीं हुई, मैं कुँआरी हूँ।"[67] आगे वह चन्दन की आशंकाएं दूर करती हुई कहती है 'बाबू साहब! एक होता तो नाम बता देती, लेकिन एक नहीं कई थे वे लोग।'

कमला की बात सुन कर चन्दन के मन में उसके प्रति सहानुभूति देख कर वह अपनी आपबीती बताना शुरू करती है कि "कई साल पहले की घटना है यह। मेरे माँ-बाप एक सेठ के भट्ठे पर काम करते थे। वहीं भट्ठे पर ही एक झुग्गी में हम लोग रहते थे। मेरा जन्म भी वहीं पर हुआ था। बचपन भी वहीं रेत-मिटटी में खेलते-कूदते बिता मेरा और वहीं पर उन भेड़ियों ने मेरी इज्जत लूटी और मुझे कहीं का नहीं छोड़ा।"[68] आगे वह रोना बंद करते हुए कहती है- "पीने का पानी दफ्तर के अहाते में लगे नल से ही लाना होता था सबको, उसके अलावा पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। लत्ते-कपड़े भी या तो ट्यूबवैल की कुंडी पर बैठकर धोते थे या नल की चौंतरी पर। एक दिन दुपहरी में मैं पीने के लिए पानी लेने नल पर गई थी। वहाँ दफ्तर में मालिक तथा अन्य कई लोग बैठे शराब पी रहे थे। मैंने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पानी से बाल्टी भरी और अपनी झुग्गी की ओर लौटने लगी। तभी मालिक ने पुकार लिया, 'कमला, जरा एक गिलास पानी हमें भी पिला जा। गला सूख रहा है। मालिक ने कहा।' मैं सीधे सुभाव बाल्टी लेकर दफ्तर में चली गई। दफ्तर के अहाते में और उसके आस-पास खड़े पेड़ों के नीचे हम बचपन से खेलते रहे थे। कई बार दफ्तर के अन्दर भी जाते रहते थे हम लोग, इसलिए कोई भय या संकोच नहीं था

[66] 'छप्पर', पृ- 52

[67] वही, पृ-52

[68] वही, पृ- 52-53

मेरे मन में। मालिक को या दफ्तर में आने वाले लोगों को पहले भी पानी पिलाते रहते थे हम। लेकिन उस दिन मेरा दफ्तर के अन्दर कदम रखना हुआ कि एक आदमी ने उठकर दरवाजा बंद कर दिया और इससे पहले कि मैं कुछ समझ पाती वे भेड़िए मुझ पर टूट पड़े। मैंने खूब हाथ-पैर मारे, चीखी-चिल्लाई भी, लेकिन सब बेकार गया। प्रतिरोध करते-करते बेबस हो गई मैं। एक के बाद एक उन सबने मेरे शरीर को नोंचा और अपनी हवस पूरी की।"[69]

कमला की बातें सुनकर चन्दन पूछता है कि इस बारे में आपके माता-पिता को पता नहीं चला क्या? तब कमला बताती है कि हाँ पता तो चला पर 'वह कर भी क्या सकते थे। उन्हीं का काम करना और उन्हीं का दिया खाना। तनिक मुँह खोला बापू ने तो ऐसा मारा कमीनों ने की अधमरा कर उनको छोड़ा। सारी देह नीली पड़ गई और सिर फट गया। बापू थाने में रिपोर्ट लिखवाने गए तो थानेदार की जेब मालिक ने पहले से ही भर दी थी। रिपोर्ट लिखने के बजाय बापू को मार कर भगा दिया गया। बलात्कार की शिकार महिला की पीड़ा क्या होती है यह कमला के दर्द से स्पष्ट होता है। यह दर्द सिर्फ कमला की ही नहीं बल्कि पुरे उस नारी समाज की है जो इस शोषण का शिकार होती हैं। आज भी हम आये दिन अख़बारों में यह देखते और पढ़ते रहते हैं कि भट्ठे में या किसी दफ्तर के मालिक ने अपने यहाँ काम करने वाली महिला का शारीरिक शोषण किया है। यह बलात्कार की घटना हमारे समाज में एक कोढ़ की तरह व्याप्त है जो दिनों-दिन कमने की बजाय बढ़ती ही जा रही है।

कमला के चरित्र के माध्यम से यह पता चलता है कि दलितों के हाथ का पानी तो सवर्ण लोग नहीं पीना चाहते। लेकिन दलित महिलाओं का उपभोग करने को वे अपनी जागीर समझते हैं। इस तरह की मानसिकता रखने वाले सवर्ण पुरुषों का एक वर्ग कमला जैसी युवतियाँ को अपनी वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझता है, उनके साथ बलात्कार किया जाता है। इनकी नजर में दलित स्त्रियों का जैसे कोई मान-सम्मान या इज्जत नहीं होती जब चाहा तब उसे मसल दो। कमला कह रही थी कि "मेरा दोष यही था कि मेरा रंग दूसरी लड़कियों से थोड़ा साफ था और मेरे नाक-नक्श दूसरी लड़कियों से थोड़े अच्छे थे।...काश मैं बदसूरत होती तो कम से कम मेरा जीवन तो बर्बाद नहीं होता।"[70] इसमें उसका क्या दोष है कि वह खूबसूरत है, इसका मतलब तो यह नहीं की उसको तोड़ दिया जाय। कमला अपने साथ हुए अन्याय, अत्याचार के बावजूद वह आत्महत्या का रास्ता नहीं अपनाती है। बल्कि वह रूढ़ और बंद समाज के समक्ष

[69] वही, पृ- 54

[70] वही, पृ- 56

डटकर सामूहिक बलात्कार से उत्पन्न बच्चे को जन्म ही नहीं देती है उसका पालन-पोषण भी करती है और उसको शिक्षित करना चाहती है, जिससे वह अपने साथ हुए ज्यादती का बदला ले सके। कमला चन्दन से कहती है "मैंने सोचा कि वह गन्दगी है और इस गन्दगी को कहीं फेंक दूँ लेकिन ममता के मोह ने रोक लिया मुझे और ऐसा नहीं कर पाई।...खिलाड़ी के सिर पर हाथ फिराते हुए 'अब यही मेरा सहारा है। बड़ा होकर यह मेरे साथ हुए जुल्म और अत्याचार का बदला ले यही मेरी कामना है।"[71] जबकि अगर हम अपने भारतीय समाज में नजर दौडाएं तो यह देख पाते हैं कि बलात्कार की शिकार लड़कियां अक्सर अपने को मौत के हवाले कर देती हैं। इस तरह के हादसे का जिम्मेवार वह स्वयं को ठहराने लगती है, जबकि कमला इसका अपवाद है। वह अनपढ़ होते हुए भी वर्चस्ववादी समाज के खिलाफ डटकर खड़े होकर विकृत परंपरा को ठुकराती हुई मेहनत मजदूरी करके बलात्कार से जन्मे अपने बच्चे को शिक्षित करने का जज्बा रखती है।

कमला अनपढ़ होते हुए भी विकृत समाज के ठेकेदारों के खिलाफ खड़े होकर अंबेडकरवादी विचार रखने वाले चन्दन का साथ देती है। अंबेडकर के मिशन को पूरा करने के लिए लोग या समाज उसके बारे में क्या कहेंगे इसकी परवाह किये बगैरह चन्दन का आखिर वक्त तक भरपूर साथ देती है। चन्दन जब रजनी की कुर्बानी को कमला से कम आंकता है तब वह कहती है "भूखे व्यक्ति द्वारा रोटी के लिए हाथ-पैर मारने तथा पेट भरे व्यक्ति द्वारा भूके को रोटी दिलाने के लिए संघर्ष करने में बड़ा अंतर है बाबू साहब! समता और समानता हमारी जरुरत है। रजनी को यह सब पहले से उपलब्ध है, उसको अपने लिए कोई जरुरत नहीं है इस सबकी। इसलिए हमारे द्वारा समता और समानता के लिए संघर्ष करने की तुलना में हमारे संघर्ष में रजनी द्वारा सहयोग ज्यादा महत्त्वपूर्ण और श्रेयस्कर है। उसका त्याग वन्दनीय है। रजनी ने इतना त्याग किया हमारे लिए तो हमें भी चाहिए कि हम उसकी भावनाओं का सम्मान करें तथा उसके हर प्रकार के हित और कल्याण में सहायक हों। इसके अलावा, हमारी यह भी कोशिश होनी चाहिए कि रजनी को कभी यह अहसास तक न होने पाए कि उसको कम महत्त्व दिया जा रहा है या उसकी उपेक्षा की जा रही है।"[72] कमला की इस नम्रता भरे भाव ने स्त्री ही स्त्री की सबसे बड़ी विरोधी होती है जो कहा जाता रहा है उसके बिलकुल विपरीत दिखाई देती है।

---

[71] वही, पृ- 55

[72] वही, पृ–124

कमला एक नारी होते हुए भी विचारों के मामलों में पुरुष से कहीं पीछे नहीं दिखाई पड़ती है, बल्कि पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के कंधे से कन्धा मिला कर चलती है। आगे जाकर वह चन्दन के मन के शंका को दूर करते हुए कहती है "मैं मानती हूँ कि तुम रजनी को काफी कुछ जानते-पहचानते हो, लेकिन तुम एक पुरुष हो बाबू साहब! नारी-मन को नहीं समझ सकते तुम। रजनी ने तुम्हारे लिए, तुम्हारे माता-पिता के लिए तथा तुम्हरी भावनाओं के साथ जुड़कर समाज के लिए जो कुछ किया है और कर रही है तथा इस सबके लिए अपने पिता तक की उपेक्षा की है उसने, तो इसका मतलब है कि वह तुम्हें प्यार करती है-और पूरे प्राण-पण से करती है। उसके प्यार को समझो बाबू साहब!"[73] एक स्त्री क्या सोचती है वह केवल एक स्त्री ही बेहतर और आसानी से जान सकती है, वह कहती है "बचपन से लेकर अब तक तुम्हारी भावनाओं के साथ जुड़ी रही है वह, और उन्हीं के अनुरूप जीती रही है बाबू साहब! तुम्हारे जीवन के सफ़र की सहयात्री है रजनी। जहाँ तक मेरा सवाल है, सफ़र का एक पड़ाव भर हूँ मैं तो। और केवल इतना ही महत्त्व होता है पड़ाव का कि थोड़ी देर के लिए यात्री वहां ठहरे, विश्राम करे और पुनः चल दे अपने पथ पर। लेकिन सहयात्री साथ-साथ चलता है-अंतिम पड़ाव तक, बराबर कष्ट और थकान सहते हुए।...इतने दिन आपके संपर्क में रहने का अवसर मिला मुझे, इसे ही अपने जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य समझूंगी मैं।"[74]

प्रेम में तो त्याग होता है और कमला प्रेम में त्याग और समर्पण की बेहतरीन उदहारण है। प्रेम में त्याग की महत्ता को समझाते हुए वह कहती है "तुम मेरे बारे में इतना सोचते हो यही काफी है मेरे लिए। इससे ज्यादा और कुछ नहीं चाहिए मुझे।...मेरे पास खिल्लर है- जीवन का आलम्ब है। उसके साथ खाते-खेलते और बोलते-बतियाते जिंदगी कट जाएगी मेरी। लेकिन रजनी को आलम्ब चाहिए। इसलिए मेरी नहीं उसकी ओर देखिए बाबू साहब!' उसका गला भर आया था।...और कुछ न कहते हुए रसोई में चली गई कमला।"[75]

सामाजिक बदलाव के 'मिशन' में सिर्फ पुरुष ही नहीं स्त्री भी अपने को कुर्बान दे सकती है। उसको प्रमाणित करते हुए कमला ने चन्दन को स्टेज में भाषण देते हुए उसकी ओर आती हुई विरोधी की लाठी की चोट को अपने सिर पर ले लेती है। क्योंकि वह जानती है कि बदलाव के इस मिशन में चन्दन का होना कितना जरुरी है। इसलिए वह चन्दन के लिए अपनी जान को कुर्बान कर देती है साथ ही अंबेडकरवादी विचार तथा मिशन को बचाती हुई नजर आती है।

[73]वही, पृ- 125

[74] वही, पृ- 125

[75] वही, पृ- 126

हरिया : लेखक हरिया के बारे में वर्णन करते हैं कि संत नगर में रहने वाले बाकी दलित लोगों की तरह वह भी खूब शराब पिता है और नशे में धुत्त रहता है। लेकिन संयोग ही कह सकते हैं कि जब चन्दन गाँव से शहर पढ़ने के लिए आता है तो किराये में हरिया के घर में ही रहता है। हरिया भी उसे पुत्रवत स्नेह करता है और चन्दन भी उसके साथ पितृतुल्य व्यवहार करता है। जिस कोठरी में चन्दन रहता था उसका किराया तय नहीं हुआ था, जब भी अवसर मिलता था वह किराया की बात करता था। लेकिन हरिया भी अलग किस्म का व्यक्ति था, साफ इन्कार करते हुए कहता है "तुम यहाँ रहो बेटा, जब तक तुम्हें रहना है। जब तक तुम्हें इस शहर में रहना है मेरे ही घर में रहो। यहीं खाओ-पीओ। किसी तरह की कोई परेशानी हो तो बताना। पर किराए का जिक्र कभी मत करना। यह घर भी तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारा हूँ।"[76] लेकिन एक दिन चन्दन ने हरिया के स्थिति देख कर किराया की बात करने लगा तो उसके मन को बहुत आहत लगता है और चन्दन से अवरुद्ध कंठ से कहता है "मैं तो बहुत खुशी से अपने पास रखना चाहता था तुम्हें। वर्षों से गमगीनता के साए में जीता आया हूँ मैं। सोचता था तुम पास रहगे तो थोडा सुख-संतोष मिलेगा मन को, लेकिन तुम बोझ कहते हो अपने आपको। मैंने तो ऐसा कभी नहीं सोचा बेटा! तुम्हें ऐसा लगता है तो जाओ-जहाँ तुम्हें अच्छा लगे। मुझ बूढ़े का क्या है, जैसे अब तक जीता आया हूँ आगे भी जी लूँगा जैसे-तैसे।' और फिर खुद ही बुदबुदाने लगा, 'धरती पर बोझ नहीं होता आदमी, आदमी पर बोझ होता है। कैसी व्यवस्था है, यह कैसी सोच है- हे भगवान!...।"[77] हरिया का यह बात सुनकर चन्दन अचम्भित होता हुआ खुद ही कहने लगता है कि 'सुना था कि बड़े स्वार्थी और मतलब परस्त होते हैं शहर के लोग।' लेकिन यहाँ पर हरिया का व्यवहार कल्पना से परे और बिल्कुल उल्टा था। कितने प्यार और स्नेह से अपने घर में रखना चाहता है चन्दन को। इससे यह पता चलता है कि हरिया कितना स्नेही और परोपकारी व्यक्ति तथा शिक्षा को लेकर कितना सयोग है।

हरिया चन्दन को अपने पास इसलिए भी रखा था कि उसके एकाकीपन को दूर करने के लिए वह कभी-कभार चन्दन से बात करके अपने मन को हल्का कर सकेगा। लेकिन खुद अनपढ़ होते हुए भी पढ़ाई-लिखाई का महत्त्व को समझते हुए ज्यादा बात नहीं करता है, वह कहता है "पढ़-लिखकर ऊँची तालीम पाना ही तो पहला लक्ष्य है उसका। बाकी काम तो बाद के हैं। मैं अपना रोना-धोना लेकर बैठूँ उसके सामने तो इससे हर्ज ही तो होगा उसका, और कहीं वह भी मेरे दुःख से दुखी हो गया तो जरुर बाधा पड़ेगी उसकी पढ़ाई में।' यही सोचकर हरिया ने भी

---

[76] वही, पृ- 17

[77] वही, पृ- 17

कभी ज्यादा बातचीत करने की कोशिश नहीं की थी चन्दन से।"[78] लेखक ने हरिया की इस बात से यह दिखाते हैं कि हरिया जैसे एक अनपढ़ व्यक्ति कितना संवेदनशील, परोपकारी तथा शिक्षा के महत्वाकंक्षी है। इसके बावजूद एक दिन हरिया ने अपनी जीवन की दुःख भरी कहानी कह सुनाया चन्दन को कि किस प्रकार उसकी खुशहाली परिवार में किसी की नजर लग गई और उसका पूरा परिवार बिखर गया है। अपनी दुःख भरे कहानी सुनाते सुनाते उसके अन्दर की वात्सल्य उमड़ने लगता है और सोचने लगता कि चन्दन को अपने गोद में उठाते फिरे और पागल हो जाये। किन्तु वह पढ़ाई-लिखाई के महत्त्व के बारे में सोचते हुए, अब तुम्हे बहुत कुछ करना है बेटा कह कर चले जाते हैं।

घृणा और अपमान से बहुत जल्दी उबरा जा सकता है, लेकिन प्यार और आत्मीयता से नहीं। इतना प्यार करता था हरिया चन्दन से कि उसे घर पर उदास बैठा देख कर तुरंत क्या हुआ सोच कर डॉक्टर को बुलावा लेता है। जब उसे पता चलता है कि परीक्षा फीस न देने के कारण उसका पढ़ाई अधूरा रह जाएगा तो उसने चन्दन को आश्वस्त करते हुए कहते हैं "देखो बेटा! आगे से तुमको घर से पैसे माँगने की कोई जरुरत नहीं। जब तक मैं हूँ तुम्हे किसी तरह की चिंता करने की कोई जरुरत नहीं है। तुम दूसरों के लिए इतना कुछ करते हो, तुम्हारा भी ख्याल करने वाला तो होना चाहिए कोई। तुम अकेले समाज के लिए इतना कुछ कर रहे हो। मैं अनपढ़ और ऊर्जाहीन बूढ़ा तुम्हारे इस महान संघर्ष में तुम्हारे साथ नहीं चल सकता। लेकिन मेरा भी तो यह नैतिक कर्तव्य है कि मैं भी कुछ करूँ। ज्यादा कुछ मैं नहीं कर सकता, लेकिन आज से तुम्हारा सारा खर्च मैं उठाउँगा।"[79] उपन्यासकर हरिया के इस बात से सिर्फ उसकी निस्वार्थभावना को ही नहीं दिखाया है बल्कि चन्दन द्वारा समानता के लिए आन्दोलन में भी साथ देता है।

संतोष पंडा:- 'हस्तक्षेप' अखबार का संपादक सुरंजन महान्ति है। संतोष पंडा उस अखबार का एक ब्राह्मण पत्रकार है, उसकी पत्नी का नाम मिताली है। उनके ब्रूस करते हुए बाथरूम जाते ही फ़ोन की घंटी बजने लगती है तब उनकी पत्नी ने फ़ोन उठाते हुए कहती है कि आपके लिए फ़ोन है। तब वह बाथरूम से ही कहने लगते हैं कि कह दो कि वह नहाने गए हैं। ऐसे बार-बार फ़ोन आने से वो परेशान होते हुए अपनी पत्नी से पूछते हैं कि 'किस बूढ़े के बारे में बोल रही हो?' तब उसकी पत्नी ने मुस्कुराते हुए कहती है 'अरे तुम्हारा बूढ़ा नहीं है, एस.पी। तब वह

[78] वही, पृ- 25
[79] वही, पृ- 63

कहने लगते हैं कि 'मैंने सोचा कि अपना बूढ़ा है' और अपनी पत्नी से कहते हैं "साला तू है समाचार-पत्र निकालने वाला, उस धंधे में कैसे ऊपर जाओगे वह देखना चाहिए, वह न करके कैसेट-व्यापर कर रहा है, पता नहीं कौन उनके माथे में ये दुर्बुद्धि डाला है? मुझे लगता है, कुछ दिन के बाद, पता है मिताली, बूढ़ा हमें लाटरी का टिकिट बेचने के लिए बोलेगा। साला हर समय तो चिल्लाता रहता है...।"[80] आगे वह अपने को सुनाते हुए कहते हैं "साला एजेंट से समाचार-पत्र का पैसा निकालते-निकालते पसीना निकला जा रहा है, फिर विज्ञापन खोजना, महिने का टार्गेट है- पचास हजार, उसके ऊपर ये फिर कैसेट बेचना। साला समाचार कब लायेंगे, फिर समाचार लिखेंगे कब? रिपोर्टर न बन कर कोई ठेकेदार के साथ काम करता तो अच्छा रहता।"[81]

वह जिंस पैंट और कमीज पहनकर बाहर डायनिंग टेबुल के पास आते ही फोन की घंटी बजती है तब इशारे में मिताली को फ़ोन उठाने को कहते हैं। मिताली फ़ोन उठाकर जब देने लगती है तब वह पूछने लगते हैं कि कौन है, मिताली धीरे से कहती है कि एस.पी. है। मुंह में कुछ भुन-भुनाते हुए वह कहता है काम पड़ने पर दिन में दस बार फ़ोन करता है।

एस.पी नकुल रथ वैसे एस.पी नहीं डी.एस.पी. है वह। वह संतोष पंडा को इसलिए फ़ोन कर रहे थे कि एम.एल.ए. पंचानन सुना उनके मित्र थे। और वे अभी पर्यटन मंत्री हैं और किसी कारण बस वह एस.पी. पुम्पू यानी नकुल रथ के ऊपर नाराज थे। उसको डर था की कहीं उसकी जगह किसी और को वहां के एस.पी. न बना के भेज दें। इसलिए वह सिफ़ारिश के लिए संतोस पंडा को कहते हैं।

संतोष पंडा शुरू में ललटू के प्रति सहानुभूति रखते हुए उसका समर्थन करता है क्योंकि वह परमानंद बाग नामक एक भ्रष्ट सरकारी ऑफिसर को गाँव के वृद्ध लोगों के लिए सरकार से भत्ता स्वरुप सहायता के पैसा का दो-दो सौ रूपये काट लेता था, जो उसके जेब में जाता था, क्यों दलित, गरीब का पैसा काटते हो कहते हुए पिटा था। जिससे ललटू को तेरह दिन के लिए जेल हुई। जेल से ललटू को उन्होंने ही जमानत करवाई थी। यह वह इसलिए किए चूँकि एक बार उनहोंने परमानंद बाग से दस हजार का एक विज्ञापन मांगे थे पर वह दिए नहीं थे, जिससे संतोष पंडा उन्हें नापसंद करते थे। परन्तु जब वास्तविक आलोचना की बात आयी तब वह डी.एस.पी. नकुल रथ जो कि एक सवर्ण पुलिस अधिकारी है। उन्होंने संतोष पंडा से कहा कि

[80] वही, पृ- 81

[81] वही, पृ- 82

बेहेड़ा में चंद्रशेखर नामक आपके कोई रिपोर्टर है, उसके नाम पर धरमगड जेल में केस हुआ है, तब वह आश्चर्य चकित होते हुए बोले क्यों? तब डी.एस.पी. नकुल रथ कहता है "बनबिहारी त्रिपाठी वकील थे, आपको पता है? शायद पता नहीं होगा? वह बोल रहे थे कि आपके वह पत्रकार गाँव के डोम लोगों को भड़का कर वहां के शिव मंदिर में गाय की हड्डी डलवाया है। झगडे की असली वजह यहीं है।"[82] आगे वह कहते हैं कि आप सरल विश्वासी और भवानीपाटना में रहते हैं। मेरे समधी कह रह थे कि 'उसके गाँव के उच्च प्राथमिक स्कूल में उसने दो साल से गणेश पूजा और सरस्वती पूजा बंद करवा दी है, आपको पता है? आपके पास खबर है?' क्यों पूजा बंद करवाया है संतोष पंडा पूछते ही नकुल रथ कहते हैं कि मेरे समधी तो यह भी कह रहे थे कि "वह लड़का बाहर से कोई मिशनरी संस्था से पैसे लेकर उस इलाके के सभी आदिवासी-दलितों को क्रिश्चियन बनने के लिए उक्सा रहा है!"[83] उनकी इस तरह की बातें सुन कर वह कुछ सोचने लगते हैं कि ललटू आकर उनका दरवाजा खटखटाता है। उसके आते ही वह उससे पूछने लगते हैं कि मैंने सुना है कि तुम्हारे नाम पर भी केस हुआ है, तब ललटू कहता है, हाँ है, पर दादा मैं सच कह रहा हूँ उस वक्त मैं वहां पर नहीं था। ललटू का यह जवाब सुनकर संतोष पंडा ने एक ब्राह्मण होने के नाते अपने पूर्वाग्रह के चलते कहने लगते हैं, सुना है कि 'तुम्हारे गाँव के स्कूल में दो साल से गणेश पूजा और सरस्वती पूजा नहीं हो रही है?' तब ललटू कहता है "स्कूल कॉलेज तो दादा विभिन्न जाति और धर्म के बच्चे पढ़ाई करते हैं। तो वहां पर एक ही धर्म की पूजा होना क्या सही है? और स्कूल कॉलेज तो ज्ञान-अर्जन के जगह है, वहां पर अंधविश्वास फैलाना क्या सही बात है? इसलिए हम गाँव वाले आपस में विचार करके स्कूल में पूजा बंद करवा दिए हैं।"[84]

संतोष पंडा ने ललटू के इस तरह के तर्क देख कर कहा कि 'तो क्या तुम कह रहे हो गणेश पूजा और सरस्वती पूजा अंधविश्वास है?' आगे ललटू तर्क देता है 'सभी पूजा, सभी देवता तो अंधविश्वास है दादा। अगर कोई पढ़ाई न करके गणेश या सरस्वती पूजा करेगा तो क्या उसके दिमाग में विद्या अपने आप आ जाएगी?' 'पर हमारी संस्कृति, हमारी परम्परा को बच्चे नहीं जानेंगे?' तब ललटू कहता है 'जानने के लिए कौन मना कर रहा है, पर एक की संस्कृति दूसरों के ऊपर लादना तो अन्याय है।' उसकी यह बात सुन कर संतोष पंडा कहता है तो क्या 'तुम्हारे गाँव के स्कूल में भी क्रिश्चियन बच्चे पढ़ते हैं?' जबाब में ललटू आगे कहता है कि "क्रिश्चियन कहाँ से

[82] वही, पृ- 84

[83] वही, पृ- 84

[84] वही, पृ- 85-86

आयेंगे, हमारे गाँव में तो सिर्फ चार ही जाति है गोंड, माली, गौड़ और डोम। ये लोग तो हिन्दू नहीं है, इसलिए उनके ऊपर हिन्दू देवी-देवताओं को लाद देना क्या सही बात है दादा?"[85] आगे वह यह भी कहता है कि 'हम अगर हिन्दू होते तो हमें मंदिर जाने के लिए क्यों मना किया जाता है? इस तरह की दोनों में बहस चलती रहती है जब आखिरी में गो-मांस खाने की बात पड़ी तो ललटू जैसे ही कहता है कि 'हमारे संस्कृति अलग है, हिन्दुओं के लिए गाय गोमाता है... हमारे लिए वह खाद्य है, जैसे आप लोगों के लिए बकरी। 'दादा यह मैंने एक किताब में पढ़ा था ब्राह्मण भी पहले गाय खाते थे।' तब वह कहने लगते हैं कि यह क्रिश्चियन लोगों द्वारा ऐसी प्रचार होगा। तब ललटू अपने तर्क में कहता है "नहीं दादा उस किताब में है। ब्राह्मणों द्वारा लिखे हुए शास्त्र में यह बात लिखी है। और जब बुद्ध अपने अंहिसा धर्म 'जीवे दया' वाणी के प्रचार के बाद जाकर ब्राह्मणों ने गाय खाना छोड़ी है।"[86]

वास्तविक आलोचना की बात आते ही और ललटू का इतिहास का हवाला देकर यह कहना कि 'ब्राह्मण गोमांस खाते थे', तो संतोष पंडा इस तथ्य को पचा नहीं पाते हैं। और वह ललटू से युक्ति को बढ़ाना नहीं चाहते हैं, वैसे भी वह ब्राह्मण होने के नाते 'रामायण-महाभारत' की कहानी के अलावा कोई दूसरे शास्त्रों के बारे में उन्हें ज्यादा जानकारी नहीं थी। पर उन्हें यह अवश्य पता है कि 'ब्राह्मण, ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए थे, इसलिए वह श्रेष्ठ जाति में गिने जाते हैं और डोम, घासी, तेली ये सब ब्रह्मा के पैर से पैदा हुए थे, इसलिए वह सेवक जाति है और समाज के निचले पायदान में आते हैं।' तब वह सोचने लगते हैं कि तो क्या डी.एस.पी. पुम्पू जो कह रहा था वह सच है। "डोम बेईमान है! सालों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। जिस थाली में खायेंगे, उसी थाली में छेद करेंगे।"[87] इसके बाद संतोष पंडा ललटू से उसके केस के बारे में क्या किया जाया कहते हुए, उसे झूटे आश्वासन देकर जाने को कहता है और अगले दो दिन के बाद 'हस्तक्षेप' समाचार के प्रथम पेज पर लिखा होता है "मंदिर में गाय की हड्डी फेंकने को लेकर जातीय गोष्ठी-संघर्ष और संवाददाता समेत पंद्रह गिरफ्तार।"[88]

संतोष पंडा का यह चरित्र एक सच्चा चरित्र है जो एक ब्राह्मण को ब्राह्मणवाद का समर्थन करना पड़ता है जिसमें ललटू खाई है जिसके लिए उसे फंसा कर जेल भेज दिया जाता है। बड़े अर्थों में मिडिया दलित विरोधी है, जैसे पुलिस, दलित विरोधी है, अदालतें या कार्पोरेट जगत।

---

[85] वही, पृ- 86

[86] वही, पृ-87

[87] वही, पृ-87

[88] वही, पृ- 88

दलित मुद्दों पर हम कितना पढ़ते हैं, कितने दलित पत्रकार हैं, कितने जज हैं। सार्वजनिक के हर क्षेत्र में न केवल पर्याप्त दलित प्रतिनिधि है, बल्कि कुल मिलाकर, नागरिक समाज का हर हिस्सा शायद दलित विरोधी है। यही बात उपन्यासकार अखिल नायक ने संतोष पंडा के चरित्र के जरिये कहने की कोशिश की है। इससे पूरा मीडया संदेह के घेरे में आ जाती है।

2.1.2 कस्बाई-पात्र :

काणा पंडित : काणा पंडित का असली नाम श्रीराम शर्मा है, बचपन में ही चेचक की बीमारी के कारण उनकी एक आँख चली गई थी, तब से उन्हें काणाराम कहा जाने लगा था। पढ़ाई-लिखाई में तीसरे दर्जे का था। जाति में सवर्ण तथा पंडित होने के नाते पुरोहिताई का पुश्तैनी धंधा उसके पास था, इसलिए 'धार्मिक अनुष्ठानों के नाम पर जो कुछ विधि-विधान किया कराया जाता है उसने भी वह सब सिख लिया था। थोड़े से संस्कृत के श्लोक भी कंठस्थ कर लिया था उसने। पिता की मृत्यु के उपरांत उसने भी आजीविका के लिए अपने पैतृक धंधा को चुन लिया। इसके अलावा और कर भी क्या सकता था वह, इतना पढ़ा-लिखा तो था नहीं जो कहीं नौकरी पा जाता। ब्राह्मण होने के नाते नौकरी के अलावा मेहनत-मजदूरी या कोई अन्य कार्य करना उसके लिए न तो सम्मान की बात थी और न ही सुविधाजनक। किसी और मुल्क या अन्य गैर-जाति में पैदा हुआ होता तो भूखा मर जाता वह। धन्य भारत भूमि जहाँ कभी कोई ब्राह्मण भूखा नहीं मर सकता। भारतीय समाज व्यवस्था के बारे में कर्दम कटाक्ष करते हुए लिखते हैं "धन्य हो भारत की समाज व्यवस्था कि यहाँ पर ब्राह्मण भूखा मर ही नहीं सकता।"[89] यह विडंबना ही कह सकते हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था कि संरचना में कोई ब्राह्मण कभी भूखा नहीं मर सकता। चाहे वह अशिक्षित, अयोग्य और अक्षम क्यों न हो, बशर्ते वह ब्राह्मण घर में पैदा होने के कारण जन्म से मृत्यु तक किसी न किसी रूप में भोले-भाले लोगों को बेवकूफ बनाकर अपनी आजीविका मजे से पुरोहिताई चला करके सुख और सम्मान से जी सकता है। तब काणाराम भी पुरोहिताई के अलावा और काम करना क्यों पसंद करता? जबकि वह जानता है कि इस काम में शरीर को ज्याद कष्ट न देकर लोगों को बेवकूफ बना करके आसानी से अपनी आजीविका मजे से चलायी जा सकती है। पंडिताई का काम करने के कारण ही उसका नाम 'काणा पंडित' चल निकला था।

काणा पंडित के दादा को ज्योतिष-विद्या का बड़ा ज्ञान था, भुत-प्रेतादि का, ऊपरी हवाओं से इलाज भी करते थे। उसके पिता भी यह विद्या थोड़ी बहुत जानते थे, किन्तु काणा

---

[89] 'छप्पर', पृ- 34

पंडित को ऐसी कोई विद्या नहीं आती। लेकिन लोगों का विश्वास था कि जिनका बाप-दादा इतने भारी ज्योतिष विद्या के पंडित थे, तो उन्हों भी थोड़ी-बहुत जरुर आती होगी। यह हो ही नहीं सकता है कि वह कुछ नहीं जानते हो! यही विश्वास करके लोग उनके पास अपना हाथ दिखा कर भविष्य पूछने या भुत-प्रेत आदि ऊपरी हवाओं के निवारण के लिए आते हैं। विद्या नहीं थी तो क्या हुआ बुद्धि तो थी उसके पास, किसी को निराश नहीं किया। अपनी बुद्धि का उपयोग करके सबके हाथ देखकर भविष्य बताता था। जिससे उसे दान-दक्षिणा खूब मिलती थी और ऊपर से गाँव के मंदिर के पुजारी का काम भी वही देखता था। 'मंदिर में प्रसाद और चढ़ावे के रूप में खूब फल, मिठाई, कपड़े और नगद पैसा भी अलग से मिलता था'। ठाकुर हरनामसिंह के हवेली के दक्षिण की ओर उसका बड़ा सा दुमंजिला मकान था।

जब गरीब सुक्खा का लड़का चन्दन शहर पढ़ने के लिए जाता है तब काणा पंडित की सुक्खा से पहली बार मुलाकात होती है। बातचीत के दौरान जब सुक्खा कहता है आपके आशीर्वाद से चन्दन शहर गया है पढ़ने-लिखने। तब वह अपनी पूर्वाग्रहता के चलते भभकते हुए सुक्खा से कहता है "आशीर्वाद कहता है इसे। अनर्थ कर दिया तूने, महाअनर्थ'।"[90] संयोग की बात यह थी कि उसी समय ठाकुर हरनामसिंह उधर से आ रहे थे, उन्हें देख कर काणा पंडित अत्यंत क्रोधित होते हुए कहने लगते हैं "तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्म-शास्त्रों से बड़ा नहीं हो सकता तू। अपमान करता है धर्म-शास्त्रों का, वेद-वेदांगों का और पूछता है क्या हुआ, नास्तिक...।"[91] काणा पंडित की यह बात सुन कर सुक्खा घबराने लगता है और दीनता से कहता है, 'जान-बुझकर मैंने कोई गलती नहीं की पंडित जी, अनजाने में कुछ हो गया हो तो माफ़ कर दें।' लेकिन सुक्खा की इन बातों से उस पर कोई असर नहीं होता है, बल्कि प्रायश्चित स्वरुप उसको प्रतक्ष्य रूप में धमकी देते हुए उससे अपने बेटे को जल्द शहर से वापस बुलाने को कहता है।

ठाकुर साहब को पास देख कर वह और भी आग-बबूला हो गया। 'गुस्से और घृणा से उसने एक बार सुक्खा की ओर देखा, फिर ठाकुर साहब की ओर मुंह करके ताव और तेवर से कहने लगे 'होने को रह भी क्या गया है ठाकुर साहब। सबके मुँह पर कालिख पोत दी है सुक्खा और उसके बेटे ने।' सुक्खा की बात सुनकर ठाकुर साहब कुछ कहते उससे पहले ही काणा पंडित बोल उठा "सुन लिया आपने भी ठाकुर साहब! आज तक किसी का बेटा शहर पढ़ने नहीं गया।

---

[90] वही, पृ- 35

[91] वही, पृ- 35

कई पीढ़ियों से हमारे-आपके पुरखे इस गाँव में रहते आए हैं। कभी किसी ब्राह्मण-ठाकुर या सेठ-साहूकार का बेटा इतना ऊँचा नहीं पढ़ा, लेकिन यह दो कौड़ी का आदमी, यह चमार की औलाद हम सबके मुँह पर कालिख पोतने चला है-बेटे को ऊँची तालीम के लिए शहर भेजकर। यह अपमान है ठाकुर साहब, हम सबके मुँह पर एक चाँटा है।"[92] इनकी इस बात से यही प्रतीत होता है कि ऐसे पूर्वाग्रह रखने वाले व्यक्ति यह कभी नहीं चाहते हैं कि गरीब, दलित के बच्चे पढ़-लिखकर उच्च तालीम पाकर समाज में सम्मान के साथ जीवन बिताएं। इनकी इस तरह की मानसिकता का आभास तब लगता है जब सुक्खा को ठाकुर साहब समझा रहे थे कि वह अपने लड़के को शहर से गाँव वापस बुला लें। इन दोनों के बीच हुए संवाद को वह अबतक चुपचाप खड़ा सुन रहे थे, जब सुक्खा ने अपने बेटे को न बुलाने की असमर्थता जताई, वैसे भी काणा पंडित सुक्खा को अपने पैर की जूती की धूल से ज्यादा कुछ हैसियत का नहीं समझते थे, उसका हौसला तोड़ने को जरुरी समझते हुए उन्होंने ठाकुर साहब को सम्बोधित करते हुए कहता है "सुन लिया ठाकुर साहब। ये आलम हैं इन लोगों के। एक तो अनर्थ करता है ऊपर से मुँह लड़ाने से भी बाज नहीं आता है। अछूतोद्धार का नतीजा है यह सब। और करो हरिजनों का उद्धार, और सिर चढ़ा लो इनको। अभी तो देखना हम सबके सिर पर मूतेंगे?"[93] काणा पंडित के यह कथन 'भेद' उपन्यास के बाया वकील की याद दिला देता है, चूँकि वह इस प्रकार दलित विरोधी हैं, वह उनके विरोध में संविधान तक उखाड़ फेंकने की बात करता है। इन दोनों के आचरण में दलितों को सम्मान से न जीने देने का भाव साफ दिखाई देता है।

चन्दन द्वारा शुरू किये गये सामाजिक बदलाव के आन्दोलन से शहर के अलावा मातापुर जैसे गाँव में भी व्यापक प्रतिक्रिया दिखाई देने लगी। जिससे 'जन्म के आधार पर व्यक्ति को श्रेष्ठ या हीन मानने की भावना का लोप होने लगा और उसके स्थान पर व्यक्ति के गुण-कर्म तथा योग्यता पर श्रेष्ठ मानने की भावना का उद्रेक हुआ। इस चेतना से गरीब दलित लोगों ने ठाकुर, साहूकारों की बात मानने से इंकार करने लगे, काणा पंडित समेत गाँव के ठाकुर, साहूकार तथा अन्य सवर्ण लोगों ने इन लोगों को समझाने की कोशिश की। जब देखा कि ये लोग मानने के लिए तैयार नहीं हैं, तब काणा पंडित अन्य कोई उपाय न पाकर अपनी आजीविका के लिए मातापुर छोड़ कर अपनी पोथी-पतरा के साथ अपनी सारी विद्या-बुद्धि व अनुभव लिए किसी अज्ञात स्थान की ओर चले जाते हैं।

[92] वही, पृ- 36

[93] वही, पृ- 38

पंगनिया बुढा : फिरोजपुर गाँव के कालीसुंदरी ठाकुरानी के पुजारी बाबा को पंगनिया बूढ़ा कहते हैं। उसका शरीर का रंग तुरई बीज की भांति काला है। सारे मुँह पर बड़ी-बड़ी माता के चिह्न है। उसके बायें आँख के ऊपर एक बड़ा-सा चिह्न है, ऊपर से वह बड़ा शराबी है। जब देखो उसकी आँख रुंज की तरह लाल दिखती है। नाक के ऊपर से माथे तक एक सिंदूर का तिलक, कंधे तक उसके सफ़ेद बाल, उसमें फिर तीन जटाएँ। सबसे लम्बे जटा में एक 'कनियर' का फुल लगा रहता है, उसके साथ-साथ कंधे में हमेशा तेल-सिंदूर लगी एक कुल्हाड़ी रहती है। बूढ़े के इस तरह की वेश-भूषा देख कर बच्चे से लेकर बूढ़ा तक सभी डरते थे, उनका मानना था कि उसको कोई जादू-टोना करना आता है और वह 'पांगी'[94] जानता है। इसलिए उसका नाम पंगनिया बूढ़ा है, पर उसके सामने लोग उसे पुजारी बाबा, पुजारी मामा, पुजारी नना आदि बुलाते हैं।

उसके बारे में लोगों का कहना था कि "एक बार उन्होंने पलसागड़ के दाम झा के ऊपर जादू-टोना कर दिया था, जिससे दाम झा के खाने के थाली में हाथ रखते ही चावल जोंक और पानी खून बन जाता था। दूसरों को जब यह सब चावल और पानी दिख रहा था तब वह सब दाम झा को जोंक और खून दिखाई दे रहा था। जिसके चलते वह बिना खाए-पीये पंद्रह दिन के भीतर मर गया।"[95] दूसरी बार बूढ़ा ने ज्येष्ठ महीने की प्रचंड धूप में अपने समधी के घर से वापिस लौटते वक्त उनको बहुत प्यास लगी थी। सामने के गाँव के एक गौड़ घर में जाकर थोड़ा दही मांगता है। घर में दही होते हुए भी गौड़ ने उनसे दही नहीं है कहा, तब बूढ़ा वहां से 'राम नहीं, गोविंद नहीं है' कहता हुआ हँसते हुए चला जाता है। उसके बाद गौड़ घर के गाय ने दूध नहीं दिया। जब गौड़ ने दूध निकालने कि चेष्टा की तो गाय के थुनों से दूध के जगह सिर्फ मैला पानी निकला।' तब अगले दिन ही गौड़ ने दही, घी लेकर उसके सामने रख देता है और उसके सामने दंडवत होकर लेट गया है। तब बूढ़े ने एक कटोरी में थोड़ा दही और घी डाल कर उसमें अपनी बायें पैर की उंगली डुबोकर उस गौड़ को 'पी साला कहते हुए पीने को देता है। विचारा गौड़ डर के मारे सब पी जाता है।' उसके बाद गाय के थून से पानी नहीं, दूध निकलता है। इस तरह के न जाने कितने अंधविश्वास, दलित, आदिवासियों में देखने को मिलते हैं, जिसके चलते वह इस तरह के धोकेबाज बाबाओं के झाँसे में पड़ कर अपने को अन्धकार में रख लेते हैं। कहा जाता है कि 'जीवन है तो आशा है, आशा है तो डर है और डर है तो अंधविश्वास है।' इस तरह के

[94] जादू-टोना करने वालों व्यक्ति को ऐसा कहा जाता है ।

[95] वही, पृ- 40

भंड बाबाओं ने गरीब, दलित, अशिक्षित समाज में डरा-धमका के उनके मन में अन्धविश्वास जैसी भावनाओं को पैदा भी करवाते हैं।

जब किसी से काम निकलवाना हो तो ऐसे ही लोगों का उपयोग किया जाता है। बाया वकील ने भी पंगनिया-बूढ़ा से उसकी ट्रक छुडवाने के लिए दिनामास्टर के घर भेजता है। ललटू को आते देख कर बूढ़ा अपनी दांत दिखाते हुए उसकी प्रशंसा करते हुए दिनामास्टर के तरफ देख कर कहता है "मास्टर, आपका बेटा तो आप से लम्बा हो गया है। और देर मत कीजिए, अब उसकी शादी करा दीजिए।"[96] पुजारी बाबा की इस बातों से यह प्रतीत होता है कि गरीब घर के लड़के-लड़कियां का उम्र अगर अठारह-बीस हो जाये तो उनकी शादी करा देना चाहिए। इस भारतीय समाज में आज भी यह देखने को मिल जाता है कि गरीब बच्चों के बारे में इस तरह की बाते कोई भी निस्संकोच होकर कह सकता है। जबकि सवर्ण घर के लड़के-लड़कियों के उम्र पचीस-तीस हो जाये तो भी कोई इस तरह की बात नहीं कर सकता। यह भी एक तरीका है गरीब दलित आदिवासियों का शोषण करने का। समाज की यही रूप दिखाने के लिए रचनाकार ने इस चरित्र का चयन किया है।

पुजारी बाबा के इस बात को सुन कर दिनामास्टर हंसने लगते हैं, तब ललटू को पता चल जाता है कि वह उनके घर क्यों आया है, और पूछता है 'कुछ काम है क्या, दादा?' पुजारी बाबा ने सीधे उत्तर न देकर दिनामास्टर की तरफ देखता हुआ कहता है "आप बोलिए मास्टर। आपके बेटे को आप बोलेंगे तो अच्छा रहेगा।"[97] उनकी इस बात से यह साफ झलकता है कि वह चाहे तो गरीब दलित व्यक्ति को किसी भी तरह से और किसी भी नाम से बुला सकते हैं पर उनको ऐसा कोई गलती से भी कह दे तो महाभारत खड़ी कर देते हैं वो लोग।

अपने पिता के द्वारा बाया वकील के ट्रक क्यों अटकाए हो पूछे जाने पर वह कहता है कि मैं नहीं कमिटी के बच्चे अटकाए हैं और ट्रक न छोड़ने की असमर्थता जताई। तब जोर देते हुए पुजारी महाशय कहता है 'कमिटी में और कौन है, बाबा? तू तो सब कुछ है।' आगे पुजारी ने कुटिल हंसी हँसते-हँसते कहता है "समुद्र में रह कर मगरमच्छ के साथ दुश्मनी करने से पछताना पड़ेगा, बाबू, तू बच्चा है।' 'बाया वकील हमारे गाँव के सब कुछ हैं, और तेरे पिताजी उसके स्कूल में मास्टर है। बात को थोड़ा समझ।"[98]

---

[96] वही, पृ- 41

[97] वही, पृ- 41

[98] वही, पृ- 42

ललटू पुजारी बाबा के मन के भाव को जानकर उनसे तिरस्कार करते हुए तत्काल कहा कि “मुझे क्या समझा रहे हो दादा? आपको समझना चाहिए, आप बुजुर्ग हैं। मगरमच्छ को बिना मारे पानी में घर कैसे बना सकते हैं? आप जाकर बाया वकील से कह दीजिये, वह जो कर सकता है, वह करे, हम कभी भी जब्त किये हुए पेड़ नहीं छोड़ेंगे, चाहे मर भी जाएँ।”[99]

ललटू का इस तरह का कठोर जवाब सुन कर जैसे उसके खून में आग दौड़ने लगी, तुरंत गुस्से में परोक्ष धमकी देते हुए दिनामास्टर से कहता है “देख, देख तो मास्टर, शरीर में एक बूंद जहर नहीं, तुम्हारा बेटा कैसा ‘पानी धंड’[100] जैसे पूंछ से उछल रही है। साला मरेगा। जैसा काम, वैसा फल। उसे संभालो। बाद में मुझे दोष मत देना। मैं बहुत हरामी हूँ। अपने बाप को भी नहीं छोड़ता। उसे संभाल कर रखिए।”[101] पुजारी बाबा के इस चरित्र के माध्यम से लेखक अखिल नायक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार इस तरह के भंड बाबाओं के इस्तेमाल करके बनबिहारी त्रिपाठी जैसे लोग डरा-धमका के गरीब दलित लोगों के उठते स्वर को दबाकर उनका शोषण करना चाहते हैं।

2.1.3. ग्रामीण-पात्र

सुक्खा :सुक्खा अपनी पत्नी रमिया के साथ घास-फूस के छप्पर में रहता है। यही कोई पैंतालीस-पचास के आसपास रहा होगा मुश्किल से। कठोर परिश्रम और दमे की बीमारी ने उसे असमय ही बूढ़ा बना दिया है। थोड़े देर काम करते ही चक्कर आने लगता और शरीर निढाल सा हो जाता है। वह इस दुसाध्य बीमारी से मुक्ति चाहता है मगर गरीबी ऊपर से शहर में चन्दन की पढ़ाई का खर्चा। उसे अपनी चिंता नहीं है, बस्स रात-दिन चन्दन की पढ़ाई-लिखाई पूरी होने की चिंता लगा रहता है। वह चन्दन के पढ़ाई-लिखाई को लेकर आस्थावान है, इसलिए पत्नी रमिया से कहता है “चुप रहो पगली, कोई पेट से बड़ा बनकर नहीं आता है। पढ़-लिखकर बड़े बनते हैं सब। क्या पता हमारा चन्दन भी कल को कलक्टर या दरोगा बन जाए। अपनी चिंता छोड़, हमें थोड़े दुःख उठाने पड़ रहे हैं तो क्या, दुख के बाद ही सुख आता है। हमारे दिन भी बहुरेंगे कभी न कभी।”[102] उसकी जीवन संगिनी रमिया भी उसके सुख-दुःख में साथ देती है। जब लगान न दे पाने से अपनी जमीन से बेदखल कर दिए जाने का मुनादी सुन कर चन्दन के बारे में

[99] वही, पृ- 42

[100] ‘पानी धंड’ यानि पानी में तैरने वाला सांप ।

[101] वही, पृ- 42

[102] ‘छप्पर’, पृ- 11

सोचकर घबराने लगते हैं और गहरे सोच में पड़ जाते हैं वह, 'क्या चन्दन भी अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़ कर मेरी तरह शोषण और बर्बरता की चक्की में पिसेगा, गुजर-बसर के लिए लाला-साहूकारों के तलुए सहलाये; ठाकुर-जमींदारों के सांटे और दूधमुँहे बच्चों की गालियाँ सहे; वह भी रुखी-सुखी रोटियाँ खाकर पशुवत जीवन जिए, उनमें सब कुछ बर्दाश्त करने की शक्ति है परन्तु चन्दन के जीवन की बर्बादी वे नहीं देख सकते हैं। उनकी इसी उच्चाभिलास तथा चन्दन को उच्च शिक्षा के लिए शहर भेजने की दृढ़ इच्छा शक्ति ने उसे मातापुर के सवर्ण के पंच के निर्णय स्वरूप अपने गाँव से बहिष्कृत कर देता है।

सुक्खा के चरित्र के माध्यम से लेखक यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि सदियों की घृणा, अपमान, उपेक्षा और तिरस्कार के शिकार दलितों में स्वाभिमान की भावना जन्म ले चुकी है और उनमे आत्मसम्मान से जीने की इच्छा दृढ हो गयी है। जब ठाकुर, जमींदारों द्वारा सारे रास्ते बंद पाकर भी उसने अपनी जिंदगी के रास्ते बंद होने नहीं दिए। अपनी छोटी सी बोंडिया में ही मेहनत से कमाना शुरू कर देता है।' भैंस मर गयी, लगान न देने के कारण खेत से बेदखल कर दिया गया। इतना ही नहीं लाला के पास अपनी मकान गिरबी रख दिया, फिर भी वह हिम्मत नहीं हारी। जब पत्नी रमिया द्वारा समझाया गया कि 'ठाकुर जमींदारों से लड़ाई लेने में कहाँ का हित है।' उसका भी उन्होंने आत्मविश्वास और दृढ़ता से प्रतिवाद करते हुए कहता है "चुप रह रमिया! मत ले ऐसे जाहिलों का नाम मेरे सामने, जो मेरे बेटे का जीवन बर्बाद करने पर तुले हैं। मैं मर जाऊँगा, भूखा प्राण तज दूँगा, सब कुछ बर्दाश्त कर लूँगा मैं, पर चन्दन को इस नर्क में नहीं पड़ने दूँगा कभी, जिस नर्क में मुझे रहना पड़ा है। तू अपना काम देख रमिया...।"[103] ऐसा कह कर वह बस्ती की ओर निकल जाता है। यह सिर्फ अकेल सुक्खा की उच्चाभिलाष नहीं है न जाने कितने चन्दन जैसे बेटे के बाप का प्रतिनिधित्व करता है यह सुक्खा। जिसको लेखक ने सुक्खा जैसे पात्र के माध्यम से समाज को सन्देश दे रहे हैं।

सुक्खा केवल बाप ही नहीं है एक पति और इन्सान भी है, उसके भी पत्नी रमिया की तरह आशा आकांक्षाएं है। इसलिए जब रमिया कहती है कि 'चन्दन और कितना पढ़ेगा, उसको शहर से वापस बुला लो, कहीं कोई हिल्ला-रुजगार या नौकरी कर ले, जिससे दो पैसे कमाएगा तो तुम्हारी दवा-दारू भी हो सकेगी और सिर से कर्ज भी उतर जायेगा। अब तो काफी सायना हो गया है चन्दन क्यों नहीं शादी कर देते उसका। यह बात सुनकर पहले तो वह नाराज होकर रमिया को बहुत कठोर बताता है, फिर अपनी मन की आकांक्षाएं के बारे में कहता है "ऐसी बात

[103] वही, पृ- 39

नहीं है रमिया! मैं भी एक इन्सान हूँ तुम्हारी तरह मेरा भी मन करता है कि घर में बहू आए, पोती-पोते हों और उनकी किलकारियों से घर चहक जाए।"[104] लेकिन जैसे ही चन्दन की पढ़ाई-लिखाई की बात याद आती है वह अपनी भावनाएं को काबू कर लेता है। जब उसके घर में सेठ दुर्गादास ने अपनी गाय बांध रहा है सुनते ही क्रोध से काँपने लगता है वह, उसका साँसे फूलने लगती है और शरीर शिथिल पड़ जाता है। तब वह निश्चित करता है कि वह अपननी जमीन को पाने के लिए संघर्ष करेगा। अपने प्राणों की बाजी लगा देगा लेकिन सेठ दुर्गादास की गायों से अपनी जमीन खोदने नहीं देगा वह।

मेहनत-मजदूरी करके जीवन जीने वालों का जीवन बहुत कठिन होता है, कभी काम मिलता है कभी नहीं। काम मिले तो गुजरा हो जाता है और काम न मिले तो भूखे पेट रात को सोना पड़ता है। मातापुर छोड़ने के बाद सुक्खा का स्थिति बिल्कुल बैसा ही था। कोई दिन हो गए थे उसको काम की तलाश करते हुए लेकिन काम नहीं मिल पाया था। काम न मिलने से घर में जो कुछ भी खाने को था वह ख़तम हो गया था, तब वह असहाय महसूस करता है, उसे गाँव की याद आता है तब पत्नी रमिया से कहता है "तू ठीक कहती है रमिया! हम बिल्कुल अकेले हैं यहाँ, और यही सबसे बड़ी समस्या है। गाँव में पूरी बिरादरी में चाहे कोई कितना भी मजबूर और परेशान रहा हो, लेकिन भूख से मरते नहीं देखा किसी को। गाँव में तो बिना माँगे ही मदद करते हैं लोग एक-दूसरे की।...हम भी यदि गाँव में होते तो और चाहे जो होता हमारा, लेकिन कम से कम भूखे तो नहीं मरते हम।"[105]

पहले तो गाँव जाने की सोच लेते हैं फिर रमिया की गाँव लौट जाने की बात पर उसको आशंका हुई। क्योंकि वह जानता है कि ब्राह्मण-ठाकुर के व्यवहार में बदलाव की आशा करना मुर्खता है। यह बात सोचते हुए सुक्खा ने रमिया से कहता है "कुछ सोच-समझकर बात किया कर रमिया। जिन लोगों ने कहीं का नहीं छोड़ा हमको, जिनकी बर्बरता और अत्याचारों के कारण आज यह हालत है हमारी। मनुष्यता के इन हत्यारों से दया की उम्मीद करती है तू। पुरे कसाई हैं ये तो, खून में रँगे हुए हैं इनके हाथ। ये हलाल तो कर सकते हैं बहाल नहीं।"[106] इसलिए वह अपनी गाँव जाने की बजह चन्दन के पास जाने को सोच-विचार करते हैं। जैसे ही वे चन्दन के पास जाने को तैयार होते हैं, अचानक रजनी आ पहुंचती है और कहती है कि 'चन्दन दलितों को समाज में न्याय और सम्मान तथा समानता दिलाने के लिए उन लोगों को शिक्षित

---

[104] वही, पृ- 65

[105] वही, पृ- 99-100

[106] वही, पृ- 100

करने लगा है, जिससे समाज में भाईचारा बढ़े, अगर आप वहां जायेंगे तो उसका ध्यान इन कार्य से हटकर आप पर केन्द्रित हो सकता है और मैं नहीं समझती कि इससे आन्दोलन प्रभावित हुए बिना रह सकेगा।' पहले से ही सुक्खा मानवता के पक्षधर है इसलिए वह रजनी की बात सुनकर अपनी इरादा बदल देते हैं। चन्दन की इस कार्य से अपने को गौरवानित करते हुए कहते हैं "समाज व्यक्ति से बड़ा होता है और ज्यादा महत्त्वपूर्ण भी। समाज में ही हम सब हैं इसलिए तुम समाज के लिए जो कुछ कर रहे हो वह हमारे लिए भी है। समाज के हित में हमार भी हित है और समाज के सुख में ही हमारा भी सुख है। हम तुमको समाज के लिए समर्पित करने का निर्णय ले चुके हैं और यह निर्णय हमने अपने विवेक से और अपनी इच्छा से समाज के हित में लिया है। हमारे निर्णय की पत रखो बेटा! और हमें अपना निर्णय बदलने को मजबूर मत करो।"[107]

सुक्खा का यह बात सुभाषचंद्र बोष के आजादहिंद फौज के लिए अपने बेटे को संप देने वाले हजारों माता-पिता की याद दिला देता है। काश, हर माँ-बाप ऐसे हों जो अपने संतानों के सुख के लिए इतना त्याग करें।

ठाकुर हरनाम सिंह : ठाकुर हरनाम सिंह मातापुर गाँव के जमीदार थे। जिसके कारण उनके घर में हमेशा लोगों का आना-जाना लगा रहता था और आंगन लोगों से भरी रहती थी। वे केवल मातापुर की सबसे बड़े हस्ती नहीं थे, बल्कि इलाके-भर में उनका दबदबा था। कई सौ एकड़ की जमींदारी के साथ-साथ ट्रैक्टर, ट्यूबवैल, गाय-बैल, नौकर-चाकर हर चीज की रेल-पेल सी थी उनके यहाँ। कब किस खेत में कौन-सी फसल उगाया जायेगा यह सब उनको पता नहीं था, इतने बड़े मिल्लिकयत के मालिक थे वह। भारतीय की बाकी गाँव की तरह ठाकुर साहब के बिना कई भी मसला हल नहीं होता था। ऊपर से पुलिस-दरोगा, तहसीलदार-कलक्टर छोटे से लेकर बड़े तक कोई भी सरकारी अफसर हो उस इलाके के दौरे को निकले और उनके हवेली में चाय-नाश्ता किये बिना लौट जाए वे लोग-कभी नहीं। ऐसा शायदा कभी हुआ हो कि कोई सरकारी अफसर उनके इलाके के दौरे में आये और उनका आतिथ्य स्वीकार न करे तथा उनको सलाम न करें तो उनका अपमान था। बड़े-बड़े राजे-रजवाड़ों से ताल्लुकात और फिर हाकिमों के यहाँ उठाना-बैठना था उनका। इतना हैसियत थी उनकी उस इलाके में तो कौन उनका अपमान करने की हिम्मत कर सकता था।

कोई भी सरकारी अफसर हो या कारकुन, ठाकुर साहब के बिना उस इलाके की किसी भी मामले में किसी भी तरह के कोई हस्तक्षेप या सलाह-मुसबिरा नहीं करते थे। यूँ कहिये कि उस

---

[107] वही, पृ- 116

इलाके कि सरकारी कानून नाम मात्र के थे, अन्यथा असली शासन तो ठाकुर साहब का ही था। उनके बगैरह पता तक नहीं हिल सकता था वहां पर। दिन-भर गाँव के कच्चे रास्तों पर धूल उड़ाती मोटरगाड़ियों से घूमते रहते थे। अंग्रेजी शासन के ज़माने में एक छोटी-सी रियासत के राजा होते थे उनके पूर्वज बाद में राजा नहीं रहे लेकिन जमींदार अवश्य रहे हैं। अपने इलाके में उनका इतना मान या हैसियत थी कि किसी का हिम्मत नहीं कि कोई उनकी बात को टाल सके। उनके सामने आँख उठाकर बात करने से भी लोग कतराते थे। इतना सबकुछ होने के बावजूद उनके जीवन में कमी थी तो सिर्फ बेटे की। शादी के इतने साल बाद कभी बेटे जैसे चीज का मुँह नहीं देखा उन्होंने और पत्नी का गुजरे हुए कोई साल हो गए थे। ले-देकर रजनी थी उनके जीवन में, एकमात्र संतान। बाकी पिताओं के तरह वह भी अपने बेटी रजनी का शादी करना चाहते हैं, जिसके लिए वह चिंतित रहते हैं। लेकिन रजनी पढ़ी-लिखी प्रगतिशील चेतना के महिला होने के नाते विवाह से पहले जो सबसे जरुरी चीज है वह करना चाहिए कहती हुई शादी करने से इंकार कर देती है।

काणा पंडित की तरह ठाकुर हरनाम सिंह भी दलितों के शिक्षा विरोधी हैं। अपनी बेटी रजनी के द्वारा शिक्षा हर किसी का संवैधानिक अधिकार कहने पर भी वह कहते हैं "यही तो मैं तुम्हें समझाना चाहता हूँ बेटी! अकेले चन्दन की पढ़ाई-लिखाई से हमें कोई आपति नहीं है। लेकिन चन्दन की देखादेखी यदि सब चमार-चूहड़े पढ़-लिख जाएँ और सब-के-सब बाहर जाकर नौकरी करने लगेंगे, तो कल को हमारे खेतों और घरों में कौन काम करेगा?[108] रजनी द्वारा लाख समझाने के बावजूद सामाजिक समानता की बात को वह किताबी ज्ञान कहकर अपनी अस्तित्व की बात करते दीखते हैं। अपने सामंती-संस्कारों तथा पूर्वाग्रह के चलते ब्राह्मणी मानसिकता को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है बल्कि सामंती अस्मिता की बात करते हैं "प्रश्न औचित्य-अनौचित्य का नहीं है। बल्कि प्रश्न अपनी अस्मिता का है। इतिहास और परंपरा से समाज में हमारा वर्चस्व रहा है। हमारा वर्चस्व कायम रहे हमारी अस्मिता इसी में है। अस्मिता के बिना मनुष्य जिन्दा नहीं रहा सकता।"[109] ठाकुर साहब की इन बातों के जरिये उपन्यासकार यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि वर्चस्ववादी समाज के लोगों की अस्मिताएं अस्मिताएं हैं और बाकी लोगों की अस्मिताएं कोई मायने नहीं रखता है शायद उनके लिए। जिस कारण आज भी भारत में उच्च-नीच की दीवारें दिखाई पड़ती है, कहने को तो ये इस बात से इंकार करते हैं लेकिन वास्तविक हक़ीकत

[108] वही, पृ- 71

[109] वही,पृ- 73

कुछ ओर है जो उपन्यास के पात्र ठाकुर हरनामसिंह के माध्यम से लेखक दिखाने की कोशिश किया है।

हरनामसिंह नहीं मानते हैं कि उन्होंने दलितों के साथ कोई ज्यादती या जुल्म-अत्याचार या शोषण-उत्पीडन किया है, जैसा कि वे कहते हैं "अपनी ओर से क्या किया है मैंने? कुछ भी तो नहीं। परंपराओं का पालन किया मैंने तो, व्यवस्था के साथ जिया हूँ मैं तो बस। मेरा कसूर क्या है, मेरे ऊपर आक्रोश क्यों?"[110] और वे दलितों से माफी क्यों माँगे, लेकिन उपन्यासकार ने रजनी के माध्यम से ठाकुर साहब को दलितों से माफी मंगवाकर उनके आक्रोश को शांत करना चाहती है, वरना 'समाज के बीच जीना कठिन होगा हमारा।' अंततः ठाकुर हरनाम सिंह का ह्रदय परिवर्तन हो जाता है और उन्होंने पंचायत बुलाकर केवल अपने जीने गुजरे लायक जमीन रखकर शेष जमीन गाँव के भूमिहीन दलितों में बाँट देते हैं और हवेली का त्याग करके एक छोटे-से मकान में रहने लगते हैं। उपन्यासकार ने सामंती मानसिकता रख कर दलितों का उत्पीडन-शोषण करने वाले हरनामसिंह के दिल में बुद्ध के विचार तत्व का पुट करके उनको मनुष्य के पैरोकार बना देते हैं "मनुष्यता ही हमारा गोत्र हो, मनुष्यता ही हमारी जाति और मनुष्यता ही हमारा धर्म हो। इसलिए मेरा तुमसे अनुरोध है सुक्खा कि मुझे ठाकुर साहब नहीं, हरनामसिंह भी नहीं, केवल हरनाम कहकर पुकारो तुम, जैसे मैं तुम्हें 'सुक्खा' कहता हूँ।"[111] उपन्यासकार ने हरनामसिंह जैसे दोहरे चरित्र निभाने वाले व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक क्रांति या परिवर्तन को दिखाने का प्रयास किया है, लेकिन वास्तविक जीवन में आज यह क्रांति कितना सम्भावीय है यह कहा नहीं जा सकता फिर भी कर्दम ने साहित्यिक क्रांति के माध्यम से एक सामजिक परिकल्पना की है।

बनबिहारी त्रिपाठी : फॉरिस्टर शचिकान्त त्रिपाठी जिन्होंने अपने मजाकिया और चालाकी भरे रवैये के कारण फिरोजपुर गाँव के पारंपरिक जमींदार लोचन हाती के सरलता का फायदा उठा कर उनसे उनकी जमींदारी हड़प ली और वहाँ का नया जमींदार बन जाता है। बनबिहारी त्रिपाठी यानी बाया वकील उन्हीं का बेटा है जो राष्ट्रीय संघ की विचारधारा रखने वाले व्यक्ति के प्रतीक है। उन्हें लोग 'वकील-आज्ञा' बुलाते हैं। उनको लोग इसलिए ऐसा बुलाते हैं कि 'वे बहुत गुस्सैल हैं और मानो वह जब बात कर रहे होते हैं तो लगता है धमका रहे हैं,

---

[110] वही, पृ- 97

[111] वही, पृ-122

'अनुरोध करते समय लगता है आदेश दे रहे हैं।' यूँ कह सकते हैं कि उनके मुँह को आदेश ही अच्छा लगता हो।

बनबिहारी त्रिपाठी को कलकत्ता में वकालत की पढ़ाई करते समय ही उनके दोस्त उनको बाया-वकील बुलाते थे। वकालत छोड़ते हुए उनको बहुत दिन हो गये हैं लोग कहते हैं कि वह कलकत्ता या भवानीपाटना में वकालत करते थे। एक बार की बात है किसी मुक़दमा यानी केस में हार गए। 'हार-जीत तो हमेशा होता रहता है और यहीं संसार का नियम है आज जो हार गया है हो सकता है कल वह जीत जाए।' परंतु वह अपनी पूर्वग्रहता कहे या अहंकारवश इस हार को बर्दाश्त नहीं कर पाए और अपनी पैर की चप्पल निकाल कर जज के मुँह पर फेंकने लगे। उस घटना के बाद उनका लाइसेंस रद्द कर दिया गया तब से वह गाँव लौट कर खेत में मन लगाये हुए हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वह खुद सुबह उठ कर खेत जोतने का काम करते थे। एक तो जाति के ब्राह्मण जो वर्ण-व्यवस्था के अनुसार सबसे श्रेष्ठ जाति है और ऊपर से वकालत की पढ़ाई किये हुए थे, तीसरा उनके घर में मजदूरों की कमी नहीं थी इसलिए वह खेती का काम खुद नहीं करते थे सिर्फ सुबह उठ कर चाय-नास्ता करके खेत की तरफ से घूम के आ जाया करते थे।

एक बार की बात है, वैसे ही हर दिन सुबह की तरह वह अपने खेत में गए हुए थे और उनके पैर में एक कांटा लग जाता है। तब भुवन गौड़ नामक मजदूर ने उनके पैर से उस कांटा को निकाल दिया। काँटा निकालते ही पैर से खून निकलने लगी, खून देख कर गुस्से में बड़बड़ाने लगे और चिल्लाते हुए पास पड़ी चप्पल उठाते हुए कहने लगे "दारी...मुझे काटा...' फादरी तेरा इतना साहस... चिल्लाते हुए, आज के बाद कभी तेरा मुँह नहीं देखूंगा..."[112] और चिलाते हुए भूमि को चप्पल से पीटने लगते हैं साथ ही उनके जिद के चलते वह दो फसली, दो एकड़ जमींन भुवन गौड़ को दे दिया जाता है। किन्तु लोग भुवन गौड़ को यह जमीन मिलने के पीछे अलग कारण बताते हुए कहते हैं कि 'उनके घर में काम करने वाली केतकी के पेट भारी होने से बात कहीं चली न जाय और अन्य उपाय न मिलने के कारण उस केतकी को भुवन गौड़ के साथ विवाह कर दिया गया है। जिसका सारा खर्च बाया वकील ने उठाया था। उस दिन से उनका खेत जाना बंद हो गया और घर बैठे-बैठे किताब पढ़ना और रेडियो सुनना होता रहा। उनके घर में काम करने वाले नौकर-चाकर का यह भी कहना था कि 'पति-पत्नी में बिलकुल बनती नहीं थी वह रात को अपने पत्नी को दो अक्षरी गाली देते थे और मार-पीट करते थे। जिससे उनकी पत्नी

[112] भेद, पृ- 20

रात-रात भर रोती रहती थी। यह उनकी दूसरी छवि है जो अखिल नायक ने उपन्यास में दिखाई है।

बनबिहारी त्रिपाठी राष्ट्रीय संघ के अवशेष के प्रतिनिधित्व करने वाला प्रतीक पात्र है जो वकालत की पढ़ाई छोड़ने के बाद गाँव में शाखा चलवाने का काम करता है। जब 'जईतपुर डोम साई'[113] के सात परिवार क्रिश्चियन धर्म ग्रहण करने को मनस्थ करने की बात उठी, तब जहाँ 'महिमा टूँगी'[114] जिसे लोग टुंगुड़ीकहते हैं। उससे लग कर एक मैदान है जिसका नाम है 'घिअपोडा'[115] वहीं पर उन्होंने पहली बार शाखा चलाते हैं। शाखा में क्या होता है किसी को कुछ पता नहीं होता है फिर भी वहाँ पर जईतपुर के समेत आस-पास के कई सारे गाँव के लोग और बच्चे इकट्ठा हो गए थे। जहाँ बच्चों को 'मैं शिवाजी' और 'रामरावण' जैसे विभिन्न खेल सिखाए जाते थे। उस दिन पहली बार गाँव के सब लोगों ने वकील साहब को निकट से देखने का सुअवसर प्राप्त किया। वे सफेद रंग की धोती और कुर्ता तथा कंधे पर एक गेरुआ रंग के गमछा पहने हुए थे, हाल ही में अपने जमींदार पिता के मृत्यु के कारण सिर मुँड़वाये हुए थे। उनकी उस मुँड़वाये हुए सिर और कपाल में सूर्य की किरणें पड़कर मानो सोने जैसी चमक रही थी। उन्होंने अपने भाषण में सबको हिन्दू कहते हुए कहा कि "ब्राह्मण हिन्दू, डोम भी हिन्दू, गोण, गौड़, माली, तेली सब हिन्दू। हिन्दू-हिन्दू भाई-भाई।"[116] इसलिए हम सब एकजुट होंगे। विदेशी क्रिश्चियन और पठान जो हमारे हिन्दू भाइयों को अपना मजदूर बनाने आए हैं, उनको दूर भगायेंगे। आगे वह अपनी बात को ओर स्पष्ट करने के लिए यह भी कहते हैं कि "हम हिन्दू इस देश के मालिक हैं हम क्यों किसी का मजदूर बन कर रहेंगे, मालिक बन कर ही रहेंगे। न हम पठान बनेंगे, न क्रिश्चियन, हम हिन्दू बन कर रहेंगे। हमारे कुछ भाइयों को विदेशी क्रिश्चियन और पठान ने अपने धर्म में लेने की साजिश रच रहे हैं। ऐसा होने से हमारे शत्रुओं की ताकत बढ़ जाएगी और शत्रु की ताकत बढ़ने से नुकसान किसका है? हमारा है। हम क्या खुद अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारेंगे? कभी नहीं।"[117] आगे वह भगवान कृष्ण के गीता में कहे गए कथा का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है 'एक हिन्दू क्रिश्चियन या पठान होने से उसका मर जाना अच्छा है। जो धर्म बदलता है वह मरने के बाद नरक में जाता है आदि जैसे तर्क

[113] गाँव के अंदर एक जाति के लोग रहने वालों का छोटा-सा एक इलाका है।

[114] महिमा धर्म को मानने वाले लोगों के धर्म विषयक चर्चा के लिए एक छोटा सा घर।

[115] एक ऐसे स्थान जहाँ घी डाल कर यज्ञ किया जाता है इसलिए उस स्थान का नाम घीअपोड़ा हो गाय है।

[116] वही, पृ- 21

[117] वही, पृ- 21-22

देता है इससे पता चलता है कि उनकी पूर्वाग्रहता कितनी सोची-समझी और शोषणकारी प्रवृत्ति से भरी पड़ी है।

बनबिहारी त्रिपाठी जाति के ब्राह्मण यानी वर्ण-व्यवस्था में जिसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और ललटू ऊपर छनिया डोम यानी अछूत। पिता शचिकान्त के बाद फिरोजपुर गाँव के जमींदार कम से कम तीन सौ एकड़ के जमीन के जमींदार, जिसको कहते हैं कुबेर आकार, जिसके पैर के नीचे काम करते हैं और ललटू साधारण प्राइमरी स्कूल टीचर दीनबंधु दूरिया के युक्त दुई फैल पुत्र। वाया वकील का बड़ा लड़का फुलवानी के डिस्ट्रिक जज और छोटा लड़का ब्रह्मपुर स्टेट बैंक के मैनेजर और ललटू पढ़ाई छोड़ने के बाद 'साहाजखोल जंगल सुरक्षा कमेटी' के सभापति। इसलिए बाया वकील अगर उत्तर है तो ललटू दक्षिण छोर। दोनों में झगड़ा कैसे होता फिर भी हुआ और यह झगड़ा दूसरे प्रकार का था। झगड़ा का मुख्य कारण था साहजखोल जंगल से आता हुआ लकड़ी भरा ट्रक को अटका के रखना।

कालाहांडि प्रांत प्राकृतिक-संपदा से भरपूर है। वहाँ के जंगल वहाँ पर रहने वाले लोगों की जीवन पूर्ति करने में सहायता करता है। वहाँ के प्राकृतिक संसाधन के कॉर्पोरेट लूट, पर्यावरणीय गिरावट और ओड़िशा की संस्कृति का ब्राह्मणीकरण करने में मुख्य भूमिका बनबिहारी त्रिपाठी की है। डोम, तेली, माली, गोण, गौड़ हम सब हिन्दू भाई-भाई का भाषण देने वाला बाया वकील दंतेश्वरी राइस मिल के मालिक सेमी सेठ यानी सोमेन अग्रवाल के साथ मिलकर दलितों को हिन्दू न मानते हुए उनका शोषण करते हैं। यहाँ त्रिपाठी दोहरे चरित्र का पात्र है। सेमी सेठ से कहते हैं "कुछ भी कह सेठ घर में थोड़ा खाने लायक हो जाने पर डोम भी इस तरह दिखाते हैं और बात तो छोड़ो! और दो अक्षर पढ़ाई कर लेने से वे समझते हैं उन्होंने वेद-उपनिषद सब जान लिया है। जो जहाँ है वहाँ नहीं रहेंगे तो ऊपर चढ़ जाएंगे और इन्द्र-चंद्र कुछ नहीं मानेंगे? अरे कल की बात है हमने देखा है कि ये लोग मरे हुए बैल उठाते थे उसकी मांस खाते थे, शादी में ढोल बजाते थे... खाने के बाद जूठन, कपड़े में बांध कर अपने बच्चों के लिए ले जाते थे, आज तुम्हारा दो पैसा क्या हो गया... और दो अक्षर क्या पढ़ लिया तो क्या ब्राह्मण बन गए?"[118] आगे वह अपनी बात को ओर स्पष्ट करते हुए ओड़िया कवि सूर्यबलदेव रथ की एक गीत की उदाहरण देते हुए कहते हैं कि "देहे मन्दाकिनी रज लगाई, ग्राम शूकरी की होइब गाई? सूअर सूअर है और गाय गाय है। सात जन्म छोड़ कर अगर सौ जन्म भी सूअर तपस्या करेगा तो भी गाय नहीं बन सकता? त्रेतायुग में आपकी विरादरी के किसी शम्बूक नाम

[118] वही, पृ- 52

के बालक ने ब्राह्मण होने के लिए तपस्या कर रहा था तो मारा गया! स्वयं भगवान रामचंद्र ने उसका गला काट दिया। कुछ भी कह सेठ एक राज्य तो था राम राज्य। वहाँ पर सब अपने अपने मर्यादा के साथ रहते थे...।"[119] इससे पता चलता है कि बनबिहारी त्रिपाठी अपनी पूर्वाग्रह के कारण अपनी ब्राह्मणवादी मानसिकता को छोड़ नहीं पाते हैं और दलितों के प्रति अपनी शोषण प्रक्रिया जारी रखते हैं।

वह दलितों के इतने विरोधी हैं कि संविधान निर्माता डॉ. अंबेडकर की बुराई करते हुए विद्रूप भरी हंसी के साथ सेमी सेठ से कहने लगते हैं कि "संविधान न घोडा डिंब है वह! उस आदमी का जाति क्या जानते हो? महार। महार हमारे यहाँ की डोम-घासी जाति जैसी है। महार जो है, डोम भी वही है, समझे? जगह के अनुसार सिर्फ नाम बदल गया है।"[120] आगे वह सेमी सेठ से यह भी कहते हैं कि "उस डोम द्वारा लिखा गया संविधान के अनुसार यह देश चल रहा है इसलिए देख नहीं रहे हो डोम-घासी सरकार के जमाई बने हुए हैं ।... पढ़ाई के लिए स्टाइफंड और नौकरी के लिए कोटा। पर और ज्यादा दिन नहीं है सेठ। हमारी पार्टी को शासन में आने दीजिए देखना हम उस महार के संविधान को कचरे के डिब्बे में फेंक देंगे। ऐसे नियम बनाएंगे की कभी तुम्हारे मिल में ताला नहीं पड़ेगी।"[121] राजनीति में आने के लिए अपने मुंशी लब को इलेक्शन में खड़ा करते हैं परन्तु उसमें उनको हार मिलती है। इस उपन्यास से यही पता चलता है कि बनबिहारी त्रिपाठी वास्तव में वह व्यक्ति है जो ओड़िशा के ही नहीं भारतीय हर एक गाँव में क्या हो रहा है इसका प्रतिनिधित्व करने वाला एक सच्चा चरित्र है जो आपको ओड़िशा के ही नहीं भारत के हर गाँव में मिलेगा।

सोमेन अग्रवाल : दंतेश्वरी राइस मिल के मालिक सेमी सेठ यानी सोमेन अग्रवाल। इनके बारे में उपन्यासकार अखिल नायक बताते हैं कि 'सन 1938 मसीहा में बेहेड़ा के जमीदार दुर्जन माझी के समय से पवन सेठ नमक और मिट्टी का तेल बेचने के लिए जुनागड़ से बेहेड़ा के हाट में आते रहते थे। तब से इनके पूर्वज ओमप्रकाश अग्रवाल पंद्रह-बीस साल पहले अपनी परिवार के साथ राजस्थान के रतनगढ़ से आकर जूनागड़ में बस गए थे। पवन सेठ के बीस-बाईस वर्ष में दो-तीन बार बेहेड़ा हाट आने के भीतर उनका परिचय जमीदार दुर्जन माझी से हो गया था। दुर्जन जाति के भतरा और बहुत सरल सीधे-सादे व्यक्ति थे। एक बार उनके कानों मे दर्द होने लगा कितना वैद्य-गुनिया/तांत्रिक दिखाने के बाद भी उनकी यह बीमारी ठीक नहीं हुई। यह बात

[119] वही, पृ- 52
[120] वही, पृ- 53
[121] वही, पृ- 53

सुनते ही पवन सेठ अपने साथ लाए हुए मजदूर को दुकान में बैठा कर सीधे जमींदार के घर चल दिए। किसी एक पेड़ के पत्ते को हाथ में रगड़ कर, कुछ मंत्र पाठ करके, उसमें से तीन-चार बूंद जमींदार के दाहिने कान में डाल दिए। कुछ समय बाद उनके हाथ में जमींदार के बाएँ कान से तीन-चार कीड़े निकल आए। पवन सेठ ने उन कीड़े को उनको दिखाते हुए बोले 'और कुछ दिन रह जाते तो ये कीड़े आपके सर को खा जाते!' उसके बाद उनके कान के दर्द की बीमारी ठीक हो गई तो कहने लगे कि मुश्किल में साथ देने वाला मित्र ही सच्चा मित्र है। उस घटना के बाद जमींदार दुर्जन माझी ने पवन सेठ को हाट के दिन घर बुला कर कहने लगे कि "हर हफ्ते ऐसे परेशान हो रहे हो, क्या आपको अच्छा लग रहा है? तुम्हारे नाम में आज ही एक जमीन लिख देता हूँ। सब दिन के लिए तुम इधर आकार बस जाओगे तो मुझे अच्छा लगेगा।"[122]

जमींदार के घर के सामने ही वह जमीन थी। पवन सेठ वहाँ पर मिट्टी का घर बना कर अपना कारोबार शुरू किया। पर करीब दस साल के भीतर ही उस जगह पर एक बड़ा-सा पक्का घर को दो मंजिला बनने में करीब पच्चीस साल लगे थे। जमींदार ने बिना मूल्य के रहने के लिए जमीन तो दे दी पर तीस साल के भीतर ही पवन सेठ जमींदार दुर्जन माझी के बाद उसके दो पुत्र सुग्रीव और विरंचि से पैंतालीस एकड़ उर्वर जमीन खरीद भी ली थी। इतने कम समय में पवन अग्रवाल ने जितना जायदाद और प्रतिष्ठा कमाई है। उसकी तुलना में उनके एक मात्र पुत्र सोमेन अग्रवाल का अर्जन कुछ भी नहीं है। लोग कहते हैं कि 'बाप की जायदाद की देख-रेख में ही उसका पसीना निकल जाता है।'

मिट्टी के नीचे से सोने का घोड़ा मिलने की बात झूठ है, ये बात किसी को पता हो न हो सोमेन अग्रवाल को अच्छे से पता है। लेकिन बंजर जमीन में से कैसे सोना उगाया जाता है यह विद्या उसके पिता को पता थी, यह बात भी सेमी सेठ से छुपी नहीं थी। अपने पिता से उसने भी यह विद्या हासिल की थी, नहीं तो कैसे पिता के बाद सात-सात ट्रक, तीन-तीन दुकान, एक किराने की दुकान, एक कपड़ों की दुकान, एक दवाई की दुकान और तीस लाख की एक राइस मिल के मालिक बनते?

मजदूरी वृद्धि के दावे को लेकर श्रमिकों द्वारा चलाये गये काम बंद आन्दोलन के पाँचवे दिन दंतेश्वरी राइस मिल के मालिक सोमेन अग्रवाल का श्रमिकों से आंदोलन वापिस लेने के लिए निवेदन करते हैं। लेकिन श्रमिकों का दृढ़ मत है कि जब तक उनकी मांगे पूर्ण नहीं किया जाएगा तब तक अनिर्दिष्ट समय तक आंदोलन जारी रखने के लिए कटिबद्ध हैं। तब वह सोचते

[122] वही, पृ-47

हुए मन ही मन कहने लगते हैं 'मरिचपद के रएनु, जो मांग कर खाता था उसके लिए क्या नहीं किया है वह। बच्चा पैदा करने के बाद एक बार उसकी औरत की तबीयत खराब हो गयी थी। जितनी भी जड़ी-बूटी दी कुछ काम नहीं आई। आधी रात को मेरे पास आकार गिड़-गिड़ाने लगा तो मैंने रात को अपना जीप निकालने के लिए ड्राइवर को बोला। धरम गड के डॉक्टर ने बोला 'तेरी किस्मत अच्छी है, भगवान ने बचा लिया और एक घंटा देर हो जाती तो कुछ नहीं कर सकते थे।' आज पाँच कल दस देकर सात महने में गाड़ी का भाड़ा चुकाया और आज वही कह रहा है कि 'सरकार पच्चीस रुपए तनख्वाह तय की है तो हम पच्चीस रुपए ही लेंगे, अठ्ठनी भी कम नहीं लेंगे।'

संवाददाता बनने के बाद ललटू ने सोमेन अग्रवाल के अवैधानिक जंगल की कॉर्पोरेट लूट करते हुए उनकी गाड़ी को पकड़ लेता है, तब वह वकील साहब से कहता है ''मेरे महुआ चालान से सरकार को लाख-लाख का नुकसान होता है! सरकार का नुकसान हुआ तो क्या हुआ, तेरे घर की संपत्ति तो नहीं है! तुम क्या सरकार का जूठन खाने वाला कुत्ता है जो भोंक रहे हो? न तू खुद सरकार है?"[123]

ज्यादा अमीर हो जाने के साथ-साथ लालची होने से व्यक्ति का जो चरित्र होता है या पाया जाता है वह सोमेन अग्रवाल के जरिए अखिल नायक अपने उपन्यास में दिखाने का प्रयास किया है। जैसा कि अपने नौकर लक्ष्मण को चाय के लिए बुलाते हैं "लखन...आवे हे लखन...कहाँ मर गया इतनी देर हो गई? चाय का एक कप बनाने में तुम्हें दस घंटा लग रहा है?"[124] आधा कप चाय टेबल पर रखते हुए अपने नौकर लखन से पूछने लगते हैं कि लब कब गया है? जवाब में लक्ष्मण कहता है कि मा'जन! मुर्गा के बांग के समय से गया है। अब तो लौट रहा होगा। लब जैसे ही कहता है कि ट्रक नहीं छोड़ेंगे वे तब खाट पर बैठते हुए खुद को सुनाते हुए बड़बड़ाने लगे कि "साले डोम के बच्चे को नहीं छोड़ूँगा। वह मादरचोद ही सारे फसाद की जड़ है। मादरचोद पाँच साल से मेरे पीछे पड़ा है। उसकी पिछवाड़े अगर कील नहीं घुसाई तो, मैं भी पवन अग्रवाल का बेटा नहीं...।"[125]

पिछले पंचायत इलेक्शन में उनका सरपंच पद में खड़ा होना निश्चित था और खड़ा भी होते तो हंस-खेल कर जीत भी जाते। कितना खर्च होता ज्यादा-से ज्यादा? तीन-चार लाख की बात

---

[123] वही, पृ-52

[124] वाही, पृ-44

[125] वही, पृ-46

थी! जिसके लिए वो तैयार भी थे और छह महीने पहले बाया वकील के साथ बातचीत भी कर ली थी। समझा-बुझाकर जहाँ बाया वकील गाँव में शाखा का काम शुरू किया है वहाँ सेमी सेठ चालीस-पचास हजार खर्च करके जईतपुर और ठुटिबोर गाँव में एक 'अष्टप्रहरी नाम यज्ञ' और एक गायत्री यज्ञ भी उन्होंने कराया था। ऐसे मौके पर भले ही गरीब-गरीब का शत्रु होता है पर भारतीय समाज व्यवस्था का ढांचा ऐसा बना है कि अमीर अमीर कभी कोई शत्रु नहीं बल्कि मित्र हो जाते हैं क्योंकि उनके इस रवैये से उनको दलितों के ऊपर अत्याचार करने में आसानी होती है। वैसे ही दोनों मित्र सोचते हुए बात करते हैं कि वह वकील के मुंशी लब को खड़ा करके कृष्ण, अर्जुन बनकर महाभारत जमाएंगे, मगर ऐसा हुआ नहीं। ललटू और उसके दोस्तों ने मिलकर जईतपुर गाँव के बी. ए. फेल रघु मेहेर को खड़ा कर देते हैं। लेकिन जिस दिन रघु मेहेर सरपंच की शपथ लेने के लिए पंचायत कार्यालय जा रहा था उस दिन बेहेड़ा के शास्त्री-चौक के निकट उसको खूब मारा गया। उसके लिए सोमेन अग्रवाल को दो हजार रुपए खर्च करने पड़े थे। बात थाना-अदालत तक गई अब भी केस वैसे ही चल रहा है। उस घटना से रघु मेहेर को लज्जित होना पड़ा पर सेमी सेठ का कुछ नहीं बिगड़ा, उससे क्या नुकसान की भरपाई होने वाली थी न होता अपने ही मन को समझा लिया सेमी सेठ ने।

इससे यही पता चलता है कि बनबिहारी त्रिपाठी और सोमेन अग्रवाल जैसे न जाने कितने ऐसे सोच रखने वाले उच्च वर्ण के व्यक्ति मिल कर दलितों का सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और राजनीतिक शोषण करते हैं और उनको समाज में सम्मान के साथ जीन के बाधक बनते है। सोमेने अग्रवाल के इस चरित्र के माध्यम से लेखक अखिल नायक यह दिखाने का प्रायस किया है कि यह आज का भारतीय समाज का पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है जो देश के हर कोने में दलितों और मजदूरों का शोषण करने वाला वास्तविक चरित्र है।

2.2. शिक्षा और साक्षरता के आधार पर :

2.2.1. शिक्षित-पात्र

चन्दन: चन्दन सुक्खा और रमिया के एकलौते बेटा और उपन्यास का नायक है। वह देखने में 'गोरा-चिट्टा अंग्रेज का सा बच्चा लगता है, अच्छे घर के होता तो मखमल के गद्दों पर सोता, सोने के झूले में झूलता, मोटर-गाड़ियों की सैर करता, धरती पर पाँव भी नहीं रखता कभी। लेकिन गरीबी आखिर गरीबी होता है, उसके लिए यह दिवास्वप्न जैसे लगता है। इसके बावजूद वह अपने माता-पिता की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए उच्च शिक्षा के लिए शहर आता है। हमेशा क्लांत और मलिन-सा रहने वाले हरिया के साथ रहता है। पहले से उसके मन में शहर को लेकर

एक भिन्न कल्पना थी लेकिन उसकी वह कल्पना तुरंत ही बदल जाता है। यही से उसकी जीवन-संघर्ष की नई शुरुआत होती है जब संत नगर कालोनी के लोग यज्ञ करने के लिए चंदा इकट्ठा करते हैं। चन्दन उन लोगों को समझाता है कि 'यह मान्यता गलत है कि यज्ञ करने से बारिस होगी, बारिस किसी भगवान को प्रसन्न करने से नहीं बल्कि मानसून पर निर्भर करती है। मानसून आया नहीं इसलिए बारिस नहीं हो रही है।' वह उन्हें अंबेडकर की तरह वैज्ञानिक तरीके से बताता है कि "दुनिया में ऐसा कोई भगवान, ईश्वर या परमात्मा नहीं है जो सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी है। जो सबको पैदा करने वाला, पालन करने वाला और संहार करने वाला है। जो शाश्वत और चैतन्य है।...यह मान्यता असत्य, भ्रामक तथा वैज्ञानिकता से परे है। यदि तुम लोग इस बात को मानते हो तो यह तुम लोगों की भूल है। सच्चाई यह है कि दुनिया में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, भगवान या इस तरह की किसी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य सबसे बड़ी सत्ता है, दुनिया में मनुष्य से बड़ी कोई चीज नहीं है। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म और भगवान इसमें से कोई भी वास्तविक नहीं है। ये सब मिथक हैं, काल्पनिक हैं तथा भोले-भाले लोगो को बेवकूफ बनाकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से चालाक लोगों द्वारा ईजाद किए गए हैं।...इसके सहारे कुछ लोगों की आजीविका चलती है और उनको मेहनत करके कमाने की जरुरत नहीं पड़ती।"[126] इन क्रांतिकारी विचारों के साथ उसने वहां के दलितों को शिक्षित और और संगठित करना शुरू कर देता है साथ ही समाज सुधार आन्दोलन का सूत्रपात करता है।

चन्दन जब गाँव से शहर पढ़ने आया तो दलित होने का दुःख गाँव की तरह कॉलेज में भी महसूस किया। कॉलेज में अपने सहपाठियों से तिरस्कृत और अपमानित होकर उसने दलित युवकों का एक सर्किल बनाया जिसमें रामहेत, रतन और नंदलाल के आलावा बाकी सब मिल-कारखानों में काम करने वाले कई अन्य साथी शामिल थे। उन सब में वैचारिक भिन्नता के बावजूद उनमें एक चीज सबके अन्दर समान रूप में मौजूद थी और वह है शोषण, उपेक्षा और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रवल भावना जिसने सबको परस्पर बाँध कर रखा था। नंदलाल की वकील बनने की चाहत, रतन की प्रशासनिक सेवा में और रामहेत की बिजनेस करने की इच्छुक। लेकिन चन्दन का विचार सबसे भिन्न और अनोखी था; वह अपनी सारी ताकत दलितों के समाजिक उत्थान में लगाना चाहता था। दलित समाज आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है यह जानते हुए भी वह सामाजिक समानता को सबसे पहली जरुरत मानता है और अपने दोस्तो को समझाता है कि "हमे प्रत्येक क्षेत्र में आना चाहिए।

[126] 'छप्पर', पृ- 19-20

केवल सामाजिक रूप से ही हमारी परिस्थिति निम्न नहीं है बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक, प्रत्येक क्षेत्र में हम पिछड़े हुए हैं।...लेकिन सबसे पहली जरुरत है-सामाजिक सम्मान की। यदि तुम्हारी सामाजिक हैसियत नहीं है तो चाहे तुम कोई भी काम कर लो, कितना भी धन कमा लो उस सबका कोई महत्त्व नहीं है । पैसा भी जीवन का एक फैक्टर है, मैं इससे इंकार नहीं करता लेकिन इससे पहले जरुरी है समाज में तुम्हारी हैसियत का होना।"[127]

आगे जाकर वह शिक्षा की सार्थकता और जीवन का उद्देश्य के बारे में बताता है कि 'हमारी शिक्षा की सार्थकता और हमारे जीवन का श्रेय इस बात में है कि हमें अपने साथ-साथ अपने समाज के उत्थान और विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए।' इसलिए वह अपनी शिक्षा का उपयोग सदियों से दासता और गुलामी के बंधन में जकड़े दिन-हिन् समाज के उत्थान के लिए करना चाहता है। इतना ही नहीं दलितों के लिए शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए बताता है कि शिक्षा से ही सोये हुए दलितों में जागृति आएगी तभी वे शोषण की बेड़ियाँ को तोड़ पाएंगे। बिना शिक्षा के दलित समाज के लोगों की मूक जबान को वाणी नहीं मिलेगी। इसलिए वह शिक्षा के साथ-साथ संगठन और संघर्ष पर जोर देते हुए दलितों को संबोधित करता हुआ कहता है "हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना है। एक-दो आदमी के बस का नहीं है यह काम। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इस सबके लिए फौज चाहिए, वह फौज तैयार करूँगा मैं।"[128] चंदन की इस कथन से स्पष्ट अंबेडकर के जीवन दर्शन और विचारों का प्रतिफलन दिखाई देता है। यहाँ पर उपन्यासकार चन्दन जैसे कर्मठ और अपने सिद्धांतों पर दृढ चरित्र की सृष्टि की है जो असमानता, विषमता और शोषण जैसे सामाजिक विकृतियों के लिए धार्मिक कहे जाने वाले शास्त्र को दोषी मानता है। और दलितों के सामाजिक स्थिति के बारे में वह धर्मग्रन्थ की आलोचना करता हुआ कहता है "समाज, धर्म द्वारा प्रेरित और संचालित है, हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है। 'धर्म-ग्रन्थ' ही हमारे शोषण और अत्याचार की जड़े हैं। इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरुरत है।"[129] इसलिए वह शिक्षा की महत्त्व को अहमियत देते हुए सदियों से अज्ञान और पिछड़ेपन की गर्त में पड़े हुए दलित-समाज को जगाना चाहता है।

दलित साहित्य घृणा नहीं बल्कि प्रेम की बात करता है। इसलिए वह कमला जैसी बलात्कार युवती से हमदर्दी तथा सहानुभूतिपूर्ण भावना रखता है। सामाजिक बदलाव तो वह चाहता है

[127] वही, पृ- 41-42

[128] वही, पृ- 44

[129] वही, पर- 45

लेकिन हिंसा से नहीं बल्कि अहिंसा और प्रेम से। इसलिए वह रजनी को समझाता है कि "सजा कोई समाधान नहीं है रजनी। सजा देने की बजाय व्यक्ति के सुधार का प्रयास किया जाना चाहिए। व्यक्ति को उसकी गलती का अहसास हो जाये और वह अपनी गलती को सुधार ले, इससे अच्छी कोई बात नहीं हो सकती।"[130] आगे वह यह भी कहता है कि "हम व्यवस्था के विरोधी हैं व्यक्ति के नहीं। हमारी लड़ाई व्यवस्था के खिलाफ है, किसी व्यक्ति से कोई द्वेष नहीं है हमें। यदि कोई व्यक्ति इसमें बाधक होगा तो उसका विरोध अवश्य किया जायेगा, फिर वह चाहे कोई भी हो।"[131] इन सारी बातों से यही प्रतीत होता है, लेखक ने चन्दन के चरित्र के माध्यम से सामाजिक बदलाव के लिए बुद्ध, फुले, अंबेडकर, पेरियार और मार्क्स की सिद्धांत या विचारातत्व को मिश्रित गुण वाले व्यक्ति दिखाया गया है।

दिनबंधु दुरिया:- दीनबंधु दुरिया फिरोजपुर प्राइमरी स्कूल के एक साधारण हेडमास्टर हैं। एक बार धरमगड़ ब्लॉक के एस.आई पंडा महोदय अचानक स्कूल निरीक्षण में आकर उन्होंने भिन्न-भिन्न कक्षा के बच्चों से प्रश्न पूछे और अंत में एक पांचवी कक्षा के निरंजन नामक लड़का को कुछ सवाल करने के बाद उससे उनके हेडमास्टर का पूरा नाम पूछ ही लेते हैं। कुछ समय पूर्व जो लड़का एप्पल, अम्ब्रेला जैसे शब्द का सही-सही उच्चारण करके बता रहा था वही लड़का एस.आई के मुँह से यह सवाल सुन कर स्तब्ध हो जाता है और उनके तरफ देखने लगता है। तब एस.आई पंडा ने उससे कहा कि ये जो मेरे दाहिने तरफ खड़े हैं उनका नाम क्या है? तब वह लड़का कहता है कि उनके हेडमास्टर का नाम 'दिनाज्ञा' है। सिर्फ स्कूल के इन बच्चों को ही नहीं बाकि सदस्यों को भी उनका पूरा नाम पता नहीं था और उनसे दिनामास्टर का भी कोई नुकसान नहीं होने वाला था, न जाने कितने बच्चे उनसे पढ़-लिख कर शादी करके कई बच्चे के बाप भी हो गए थे फिर भी वह लोगों के लिए 'दिनाज्ञा' ही थे।

स्कूल की यह स्थिति देख कर एस.आई. पंडा ने उनका मजाक तथा अपमान करते हुए कहा "तुम्हारा नाम भी बच्चे बता नहीं पा रहे हैं, तो क्या खाक पाठ पढ़ा रहे हो मास्टर?"[132] आगे एस.आई पंडा, महोदय ने स्कूल टेबुल से उपस्थापना नोट उठाकर पन्ना पलटते हुए पूछते हैं कि कितने बच्चों के लिए दाल पकायी गयी है, तब दिनामास्टर कहते हैं कि सब के लिए, आज्ञा। एस.आई ने देखा की उपस्थापना में तो तिरेसठ बच्चे हैं और दाल सबके लिए है। धिक्कारते हुए

[130] वही, पृ- 115
[131] वही, पृ- 118
[132] 'भेद', पृ-7

उन्होंने दिनामस्टर से कहा कि "गरीब बच्चों का दाना मार रहे हो? तुम्हें धर्म नहीं सहेगा?... उपस्थापना में तिरेसठ और दलिया नोट में एक सौ तेईस! बेवकूफ़ बना रहे हो मुझे? चोरी... डकैती... यही शिक्षा दे रहे हो बच्चों को? किसने तुम्हें मास्टर बनाया है... जाकर बाजा बजाओ बाजा...।"[133] और जाते हुए मास्टर से उनके जाति से संबंधन करते हुए जाते हैं।

यह बात सही है कि स्कूल में उस दिन तिरेसठ बच्चे आये थे, यह भी सच है कि दलिया नोट में एक सौ तेईस उपस्थापना दर्ज है पर यह भी सच है कि रघु के माँ को तिरेसठ बच्चों की दाल ही दी गयी है। इसका मतलब यह नहीं है कि वो गरीब बच्चों का दाना हड़पते हैं। गरीब बच्चों के मध्याह्न भोजन के लिए सरकार कोई बस्ता चावल और दाल तो दे देती है पर उसे पकाने के लिए लकड़ी, तेल, प्याज और मिर्च ये सब नहीं देती है उसके लिए ये सब करना पड़ता है और यह काम वह नरहरि के माध्यम से करवाते हैं। इसके बावजूद भी अगर कोई कहे कि वह गरीब बच्चों के दाल-चावल मार के खा रहे हैं तो उनका शत्रु भी यह बात नहीं मानेगा।

दिना मास्टर को गुस्से के साथ-साथ रोना भी आ रहा था। पंडा एस.आई को खरी-खरी दो शब्द सुना दे पर चुप होने के लिए मजबूर हो गए क्योंकि केंदुगुडा स्कूल से अवसर लिए मकरंद मास्टर अपनी पेंशन के लिए जिस प्रकार ऑफिस-ऑफिस भाग रहे हैं। उसका भी कभी किसी एस.आई के साथ विवाद हो गया था जिसके लिए उसका कागज अभी तक नहीं हो पाया है और दिना मास्टर का भी अवसर/रिटायरमेंट का समय पास है, यह सोच कर वह चुप रह जाते हैं।

एस.आई पंडा महोदय स्कूल से चले जाने के बाद दिनामास्टर अपने असिस्टेंट टीचर देवानंद को यह समझाने की कोशिश करते हैं कि जैसे पंडा महोदय ने कहा उसमें कोई सचाई नहीं है। लेकिन उनकी इस बात को देवानंद यह कहकर टाल देता है कि क्या मास्टर यही आपकी आदर्श है अगर समझाना है तो जाकर बाया वकील को समझाओ मैं तो मूर्ख हूँ मुझे समझाने की कोई जरुरत नहीं है।

हर दिन वह बच्चों को दाल परोसते समय पास खड़े होकर देखते हैं कि किसी के हिस्से में दाल ज्यादा और कम तो नहीं हो गयी है। एक लाइन में तथाकथित सवर्ण और दूसरे लाइन में अवर्ण कहे जाने वाले बच्चो को बैठाते हैं। ऐसा नियम बना कर रघु की माँ को कहते हैं कि किसी भी बच्चे को दो चम्मच से ज्यादा दाल नहीं देना। बाद में जो रह जायेगी तब सब बच्चों में थोड़ा-थोड़ा दे दिया जायेगा। दूसरे दिनबैठे हुए बच्चों के बीच टहल कर देखते रहते हैं परन्तु आज

[133] वही, पृ-8

दलिया परोसने के समय उनका मन नहीं लग रहा था, वह मन ही-मन सोच रहे थे कि कोई खबर न देकर एस.आई महोदय अचानक कैसे आ गए? पंडा ने बच्चों के सामने जैसे उनको धिक्कारा ये बात वह नरहरी को कहना चाहते थे फिर भूलना चाहते थे अचानक टहलते हुए सोचने लगे कि क्या बाया वकील ने उनको अपमान करने के लिए ये सब योजना बनाकर किया है? नहीं तो उनके आने से पहले उनके घर में उनके लिए खाना कैसे बना है। यह बड़ी बात नहीं है ये त्रिपाठी और वह पंडा यह हो भी सकता है। वह अपने बेटे ललटू को बहुत समझाया है पर क्या वह समझता है, तो क्या उनको फँसाने के लिए योजना करके उन्होंने पंडा एस. आई को बुलाया है, खुद को पूछने लगते हैं वह।

दिनबंधु मास्टर वैसे तो गाँधीवादी विचारधारा के व्यक्ति हैं। जब ललटू और जईतपुर जमींदार दनार साहू के भांजा युवराज के बीच दलित लड़की मंजुला को लेकर हाथापाई हुई थी। तब जईतपुर के तेली समाज के लोगों ने पंचायत बुलाकर युवराज को अपने समाज में लेने के लिए उनसे मुआबजा के तोर पर जो पंचायत का फैसल हुआ उसको मान लेते हुए, मुआवजा के तौर पर 'जातिभाई के भोजन के लिए पंद्रह किलो चावल, दो किलो दाल, सब्जी, तेल और दो सौ रुपये अनायास ही गिन देते हैं।'

जब गाँव के चेमेणी नामक एक बुजुर्ग महिला के साथ-साथ और भी बहुत सारे लोगों से बी.डी.ओ महोदय ने सरकारी भत्ता के दो-दो सौ रूपये काट लिये तब ललटू ने उसे क्यों गरीबों का पैसा काटे हो कह कर पीटने के कारण उसको पंद्रह दिन के लिए जेल हो जाता है। तब उन्होंने ललटू से कुछ दिन तक बात तक नहीं किये और बी.डी.ओ से अपने जात का कहते हुए उनसे माफ़ी माँगने के लिए कहते हैं। जो व्यक्ति एक दिन स्कूल में किसी लड़के ने नक़ल करते हुए नक़ल के कागज ललटू के तरफ फेंक देता यह देख कर कहने लगते हैं कि तू दिनामास्टर का बेटा होकर नकल कर रहा है। वही व्यक्ति आज बिना दोषी होते हुए भी पंचायत द्वारा सुनाये गये फैसला को मान लेता है।

एक दिन गाँव के 'पंगानिया नामक एक बुजुर्ग उनके घर पर आते हैं और उनसे अपने बेटे ललटू को बाया वकील के लकड़ी भरे ट्रक को छोड़ने के लिए कहलवाते हैं। तब उन्होंने ललटू को जो सब बातें कहा उसका आशय यह है कि "ललटू जो कर रहा है, वह सब गलत है ऐसा नहीं बोल रहे हैं। पर उससे उसको क्या लाभ मिल रहा है? परिवार को भी क्या फायदा हो रहा है? नुकसान ही नुकसान है। बेकार के दुश्मन बना रहे हो। घर में खाकर दूसरों के ताना सुनने के बराबर है। वह पढ़ाई तो नहीं किया, घर का कुछ मदद भी नहीं कर रहा है ,पर क्षति भी न करे!

दो वक्त खाने के लिए वैसी कुछ परेशानी नहीं है। वह घर में बैठ कर आराम से खाए। हो सके तो खेती में मन लगाये, उससे उसका मंगल है। ऐसे आवारा की तरह इधर-उधर घूम कर लोगों की गन्दी बात न सुनें।"[134] इससे उनकी विचारधारा में अनुभववादी, व्यवहारवादी रुख को प्रकट करती है।

2.2.2 अर्द्धशिक्षित-पात्र

परमानन्द बाग:- परमानन्द बाग धरमगड ब्लॉक के बी.डी.ओ है, जो अपनी पदवी का गलत प्रयोग करता है। गाँव के चेमेणि नामक एक बुजुर्ग महिला के साथ-साथ कोई बुजुर्ग गरीब लोगों का सरकार द्वारा दिया जाने वाला मासिक भत्ता पैसा से दो-दो सौ रुपये काट कर उनका आर्थिक शोषण करता है। इसका प्रतिकार करने के लिए जब ललटू पंचायत ऑफिस जाकर उससे पूछता है कि 'क्यों तुम इन गरीब लोगों का दो-दो सौ रूपये काट लिए हो' तो वह अपने जवाब में कहता है कि "यह पूछने वाला तु कौन है? तू क्या मेरा हाकिम? कलक्टर?"[135] इस चरित्र के माध्यम से उपन्यासकार ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार एक सरकारी कर्मचारी ने अपनी पदवी का गलत फायदा उठाते हुए भोले-भाले गरीब इन्सान को लूटता है और उनका आर्थिक शोषण करता है। कुछ दिन बाद इस घटना के लिए उनको अपनी पदवी से बेदखल कर दिया जाता है और जिन लोगों का पैसा काट लिया गया था उनका पैसा लौटा दिया जाता है।

2.2.3 अशिक्षित:

माझी बाबा :- गाँव के रिश्ते में पुजारी माझी बाबा और दिनामास्टर मामा-भांजा है। इसलिए मास्टराणी यानी ललटू की माँ को वे अपनी बेटी मानते हैं। एक दिन वह शाम को उनके घर आकर मास्टर जी को पूछने लगते हैं, सुना हूँ माँ, महादेव मंदिर जाती है? डरते हुए दिनामास्टर जवाब देता हुआ बोला हाँ मामा जाती तो है। पुजारी बाबा ने दिनामास्टर का यह बात सुन कर गुस्सा करते हुए कहता है "क्यों? गाँव के देवी-देवता क्या मर गये हैं? युग-युग से गाँव के हानि-लाभ, दुःख-सुख सुन रहे हैं और गाँव पर दिन-रात अपना कृपा दृष्टि बनाए रखे हैं। सभी को माँ-बाप की तरह मुश्किल में निकालते हैं, बीमार आदि दूर रखते हैं वह नहीं होते तो तू इधर नहीं होता और न मैं? उन्हें अविश्वास करके अपनी पत्नी को तू महादेव मंदिर भेज रहे हो? तू क्या

[134] वही, पृ- 42

[135] वही, पृ- 36

सोच रहा है, महादेव हमारे ठाकुरानी से बड़े हैं? बूढ़ा राजा, भएंरा, भीमा से बड़े हैं? ठुटी माएली के सात बहने हैं? पढ़ाई करके तेरी इतनी अकल है? ज्यादा पढ़ा है इसलिए अपने को बड़ा समझता है! छि:...छि:...।'[136]

आगे पुजारी बाबा उनको समझाते हुए कहा कि "महादेव भगवान नहीं है ऐसा मैं नहीं बोल रहा हूँ। मेरे बोलने का मतलब है कि वह हमारे भगवान है या ब्राह्मण-मारवाड़ी के भगवान है?"[137] उनकी यह बात सुनते ही दिनामास्टर उनसे कहने लगते हैं कि 'भगवान क्या जमीन-जायदाद है, जो तुम्हारे नहीं हमारे, हमारे नहीं तुम्हारे बोलेंगे, मामा? भगवान तो भगवान हैं, सभी के हैं।'

दिनामास्टर की बात सुन कर पुजारी बाबा आगे समझाते हुए कहतते हैं "अच्छा पाठ पढ़ा रहे हो मास्टर भांजा। महादेव अगर हमारे भगवान होते तो ढोल, मारवाड़ी क्या मंदिर बनाता? दंतेश्वरी देवी के लिए मंदिर बनाया है? ठुटी माएली ठाकुरानी के लिए बनाया है? महादेव के लिए बनाया, जगन्नाथ के लिए बनाया, ठुटी माएली के लिए क्यों नहीं बनाया? बोलता क्यों नहीं बोल?"[138]

पुजारी बाबा जब देखता है कि दिनामास्टर रास्ते में आ गए तब वह उसे समझाते हुए आगे कहता है "ठुटी माएली क्यों मंदिर में नहीं रहते हैं पता है तुझे? सिर्फ ठुटी माएली क्यों हमारे कोई भी देवी-देवता मंदिर में नहीं रहते हैं। हम सब तो मजदूर, काम करने वाले गरीब लोग हैं। हमारा घर कहने को एक या दो कमरा और मिटटी की छोटी-सी कुटिया है। हमारे देवी-देवता पेड़ के नीचे नहीं रहेंगे तो क्या बड़े मंदिर में रहने के लिए मन बनाएगा? हम तो उनके बच्चे हैं, वह हमारे माँ-बाप! बच्चे जब भूखे रहते हैं तो माँ-बाप क्या खीर-खिचिडी खायेंगे? थोड़ा चावल और 'महुली' से संतुष्ट है या खूब ज्यादा हुआ तो मुर्गा या बकरी। इतना ही, और जगन्नाथ के पास रोज साठ प्रकार का व्यंजन प्रसाद न बनते, ऐसा नहीं होता है...।"[139] आगे पुजारी बाबा अपनी बात को स्पष्ट करते हुए मास्टर से कहता है "जगन्नाथ हो या महादेव, इनके लिए रोज-पूजा और अच्छा-अच्छा प्रसाद चाहिए होता है। हमारे देवी-देवताओं के लिए कभी-कभी साल में या छह महीने में नुआ खाई, पूर्णिमा, अमावस, चैत्र के आदि दिन में कुछ अच्छा प्रसाद लगा देने से वे

136 वही, पृ-69-70
137 वही, पृ-70
138 वही, पृ-70
139 वही, पृ-70

भी साल भर खुश हैं और हम भी साल भर चिंता मुक्त रहते हैं।... आगे तेरी मर्जी गाँव के देवी-देवता कुछ अनिष्ट किये तो मुझे दोष मत देना।"[140]

पुजारी माझी बाबा के इस चरित्र के माध्यम से रचनाकार ने आदिवासी, दलित समुदाय का रीति-रिवाज, रहन सहन तथा संस्कृति को दिखाने की कोशिश की है।

2.3. लिंगगत और अवस्था विशेष के आधार पर

2.3.1. स्त्री-पात्र :

रमिया : रमिया सुक्खा की पत्नी और चन्दन का माँ एक दलित स्त्री है। 'जब वह दुल्हन बनकर आई थी तो कबूतरी-सी सुन्दर लगती थी और अपने चपल/चंचल हाथों से जल्दी-जल्दी घर का काम निपटाकर सुक्खा का इन्तेजार करती थी। लेकिन गरीबी ने आज उसके चहरे की वह चमक, वह रौनक सब बीते कल हो गई। 'सदा गुलाब के फूल की तरह खिलने वाला उसका शरीर आज सुखकर काँटा-सा दिखाई देती है। एक भारतीय नारी की भूमिका निभाती हुई अपने पति के सुख-दुःख में साथ है, बड़े-से-बड़ा त्याग कर सकती है उनके लिए। वे नहीं चाहते कि उनके इकलौते बेटे चन्दन की पढ़ाई अधूरी छूट जाए, उसकी इच्छाओं का गला घुट जाए, वह भी उनके तरह शोषण और बर्बरता की चक्की में पिसे, गुजर-बसर के लिए लाला-साहूकारों के तलुए सहलाये। लेकिन रमिया, रजनी, कमला तथा 'भेद' उपन्यास के मास्टराणी की तरह इतने विद्रोही नहीं दिखाई पड़ते हैं। इसलिए वह अपनी पति सुक्खा से कहती है "ए जी! मैं कहती हूँ चन्दन के बापू, अब तो काफी पढ़-लिख गया है चन्दन। क्यों नहीं तुम उसे लिखवा भेजते कि वह कहीं कोई हिल्ला-रुजगार ढूँढ़ ले। दो पैसे कमाएगा तो तुम्हारी दवा-दारू भी हो सकेगी और सिर से कर्ज भी उतरेगा'...और आगे पढ़कर ही कौन सा कलक्टर बन जाएगा, बड़े आदमी जाते हैं बड़े होदे तक। छोटे आदमी की क्या बिसात है, गुजरे लायक हिल्ला-रुजगार मिल जाए छोटा-मोटा, बस बहोत है।"[141] इसलिए जब लगान की मुनादी से सुक्खा शांत दिखता है तो वह उसकी परेशानी जानने के लिए कहती है "मैं तुम्हारी जीवन-संगिनी हूँ। सुखदुख मेरा सुख-दुख है। दोनों मिलकर सोचेंगे-करेंगे तो क्या पता हमारी तकलीफ ख़तम हो जाए।...या सोचते हो कि मैं बुढ़िया हो गई हूँ और किसी काम की नहीं रही, तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकती मैं। पर देखो, बुढ़िया जरुर हूँ मैं और उम्र से गिर गई हूँ, यह मेरे वश की बात नहीं है। लेकिन हिम्मत

---

[140] वही, पृ-70-71

[141] 'छप्पर', पृ- 11

और हौसले में किसी से कम नहीं हूँ मैं अभी भी। बड़े-से-बड़ा त्याग कर सकती हूँ मैं तुम्हारे लिए चन्दन के बापू।"[142] लगान की मुनादी सुनकर वह घबरा जाती है और लाला दुर्गादास से उधार लेने की बात करती है। लेकिन जैसे ही सुक्खा कहता है कि जिन ठाकुर साहूकारों के लिए आज हमारे यह दशा है उन्हीं से तुम हात फ़ैलाने को कहती हो रमिया, तब वह बात के मार्मिकता को समझते हुए अपनी भावनाओं के ऊपर काबू कर लेती है।

रजनी : रजनी ठाकुर हरनामसिंह के एक मात्र बेटी है। लेखक रजनी के बारे में बताते हैं कि "भरा-पूरा यौवन, सुन्दर-सुशील तथा नारी सुलभ सभी गुणों से संपन्न थी रजनी। नाक-नक्श और शरीर का गठन ऐसा मिला था उसे कि कामदेव भी लज्जित हो जाएँ अपने आप पर। लम्बी-लम्बी पलकों से ढँकी उसकी काली-काली आँखों में हिरनी जैसी चपलता हो न हो, लेकिन गहराई बहुत थी उनमें, और वह भी इतनी कि कोई एक बार उतर जाए उसकी इन आँखों में तो डूबे बिना रह नहीं सकता था।"[143] हर तरह की सुख-सुविधाएं थी उसके पास, उसके बावजूद न जाने क्यों कुच्छ अन्यमनस्क-सी खोयी-खोयी-सी रहती अपने आप में। उसके आँखों में शायद कोई स्वप्न, कोई आकांक्षा या कुछ और थी, जिसकी वजह से वह अपनी पिता के दलित जनों के प्रति अमानवीय व्यवहार से क्षुब्ध होकर चन्दन के अंबेड़करवादी विचारों से पूर्ण सहमत होते हुए उन पर होने वाले अत्याचार के खिलाफ लड़ती है और चन्दन का साथ देती है। वह शिक्षा के महत्त्व को जानती है और उस पर सबका सामान कानूनी अधिकार को समझती है। इसलिए वह अपनी पिता का विरोध करती है "संविधान के अनुसार देश के प्रत्येक नागरीक को सम्मान और स्वाभिमानपूर्वक जीने का हक़ है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वेच्छानुसार व्यवसाय चुनने और जीवन की दिशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है। यदि चन्दन पढ़-लिखकर कुछ काबिल बनना चाहता है तो यह उसका संवैधानिक हक़ है, इस पर किसी को एतराज क्यों होना चाहिए।...इस बात पर तो समूचे गाँव को गर्व करना चाहिए।...मैं तो कहती हूँ कि इसके लिए तो सुक्खा की मदद की जानी चाहिए और दूसरे लोगों को भी सुक्खा से प्रेरणा लेकर अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर काबिल बनाना चाहिए। जब तक दूसरे लोग भी सुक्खा की तरह अपने बच्चों को काबिल बनने की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक न देश का उत्थान होगा और न समाज का।"[144]

रजनी के जरिये लेखक ने एक नयी सोच को दिशा देने की कोशिश किया कि जब तक हमारे समाज के हर तबके का लोग शिक्षित नहीं होंगे तब तक देश और समाज का उत्थान नहीं हो

---

[142] वही, पृ- 29

[143] वही, पृ- 69

[144] वही, पृ- 70-71

सकता। रजनी स्वयं पढ़ी-लिखी प्रगतिशील विचारधारा तथा परिवर्तनकामी लड़की है। शिक्षा के बाद वह अंबेडकर के विचार को पूर्ण रूप से जानती- समझती थी और आत्मसात किये हुयी थी कि बिना शिक्षा के दलित समाज और देश का उत्थान नहीं हो सकता है। इसलिए वह अपने पिता की सवर्णवादी मानसिकता के बिल्कुल खिलाफ थी और उनका कड़ा प्रतिवाद करते हुए चेताती है कि "अपने स्वार्थ की खातिर दूसरों को बलि बनाना तो उचित नहीं है। किसी को मूर्ख बनाकर, धोखे में रखकर अथवा जबरदस्ती से अधिक समय तक उसका शोषण नहीं किया जा सकता। व्यक्ति हो या वर्ग, सब स्वतंत्र और स्वावलंबन का जीवन जीना चाहते हैं, आभाव और शोषण का जीवन कोई जीना नहीं चाहता है। समय करवट ले रहा है, लोग अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत हो रहे हैं। दलित-शोषित लोग अन्याय और शोषण की जंजीरों से मुक्त होने के लिए छटपटाने लगे हैं। शहर में इस तरह की चेतना लोगों में बहुत तेजी से आ रही है और लोग शोषण का विरोध करने के लिए एकजुट हो रहे हैं। समाज के भीतर धीरे-धीरे एक आन्दोलन खड़ा होता जा रहा है। सुक्खा का विद्रोह इस बात का संकेत है कि जब गाँव का गरीब मजदूर भी शोषण और अत्याचार के बंधन से मुक्त होकर अपनी स्वेच्छानुसार विकास की ओर बढ़ना चाहता है। समय के इस बदलाव को देखते हुए आपके लिए यही उचित और आवश्यक है कि आप भी अपने आप को बदलें, और न केवल शोषण की प्रवृत्ति का त्याग करें, बल्कि स्वतंत्र और स्वावलंबी बनने में उनकी मदद करें। अन्यथा अन्याय, अपमान और शोषण की इन जंजीरों को ये लोग एक दिन स्वयं तोड़ फेंकेंगे। उस समय ये लोग हिंसा पर भी उतर सकते हैं। इतने बड़े समुदाय के आक्रोश को दबा पाना मुश्किल होगा और उस स्थिति में आपको बहुत ज्यादा हानि भी उठाना पड़ सकती है।"[145]

रजनी अस्मिता की पुरजोर समर्थक है, इसलिए वह अपनी पिता के सामंती अस्मिता से परे दलितों के अस्मिता पर बहस करती हुई कहती है "अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए आप इतने चिंतित हैं। लेकिन जिनका आप दमन कर रहे हैं उनके बारे में सोचा है कभी। उनकी भी तो कुछ अस्मिता होगी। आप उस ओर देखने की कोशिश क्यों नहीं करते। क्या वे मनुष्य नहीं हैं?... जो आप अपने लिए चाहते हैं वह सब दूसरों को क्यों नहीं मिलाना चाहिए?"[146]

रजनी सवर्ण के घर में पली-बढ़ी है फिर भी सवर्णवादी मानसिकता की नहीं थी, जिसका स्वागत किया जाना चाहिए और लेखक ने भी वही किया है। लेखक यह सिद्ध करने का प्रयास

---

[145] वही, पृ- 71-72

[146] वही, पृ- 73

किया है कि शिक्षा के द्वारा सवर्णवादी मानसिकता तथा विचारों को बदला जा सकता है, यह अपवाद ही सही लेकिन स्वागत योग्य है। रजनी के माध्यम से उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि सब सवर्ण एक जैसी मानसिकता के नहीं होते हैं। जब ठाकुर साहब की हवेली की बैठक में उनके आलावा जिला कलक्टर, पुलिस अधीकक्ष, सेठ दुर्गादास और काणा पंडित जैसे व्यक्ति दलितों के सामाजिक समानता के खिलाफ बात कर रहे होते हैं, तब वह कमरे में घुसते ही बोली "कौन कहता है व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता। आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई है सारी व्यवस्थाएँ, और सारी व्यवस्थाएँ आदमी के लिए ही हैं। तब, यदि किसी व्यवस्था में दोष हो और वह उत्थान की बजाय पतन का कारण बनती हो, तो उसे अवश्य बदला जा सकता है, और बदला जाना चाहिए।"[147] आगे वह उग्र रूप धारण कर उन सबका विरोध करते हुए मानवीयता को सर्वोपरि मानते हुए कहती है "आप ठीक कहते हैं कि हर चीज में हित-अहित जुड़ा हुआ है। पर अपने हित की खातिर दूसरे के हितों की बलि चढ़ाना क्या उचित है? सुख और सम्मान कौन नहीं चाहता। जिस व्यवस्था के चलते एक व्यक्ति को सब कुछ मिले और दूसरा आभाव और उत्पीडन में डूबा रहे, व्यवस्था कहेंगे आप इसे। मैं पूछती हूँ यह कौन सी व्यवस्था है, यह कहाँ का न्याय है? ब्राह्मण और भंगी क्या दोनों की शरीर-रचना एक जैसी नहीं होती? क्या दोनों हाड़-मांस के बने हुए नहीं होते? क्या दोनों के शरीर में बहने वाले खून का रंग एक जैसा नहीं है? फिर दोनों सामान क्यों नहीं हो सकते?' प्रश्नों की झड़ी लगा दी रजनी ने।"[148] लेखक रजनी के इन बातों से यह स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं कि स्त्री बुद्धि के मामले में किसी पुरुष से कम नहीं है। अगर वह चाहे तो अपने तर्क के माध्यम से बड़े-से-बड़े जंग को जीत सकती है। रजनी ने अपनी बुद्धि और तर्क के माध्यम से अपनी पिता के बनी-बनाई सामंती मानसिकता को तोड़ कर एक नई राह दिखाई जो मानवता की राह थी।

शिक्षा मनुष्य के अन्दर चेतना, जिज्ञासा और तर्क जैसी भावनाएं पैदा करती है। जब एक स्त्री सिर्फ साक्षर होती है तो वह रुढियों, परंपराओं तथा संस्कृतियों का पालन सड़ी-गली ढंग से या मानसिकता के अनुसार करती है। लेकिन अगर स्त्री वाकई में शिक्षित हो जाती है तो वह तर्क-वितर्क तथा प्रश्न करना सीख लेती है। उसका प्रश्न करना ही उसे एक जागरूक नागरीक के रूप में दुनिया में खड़ा करती है। जैसे रजनी अपनी पिता से प्रश्न करती है "मैं मानती हूँ पिताजी कि शादी एक आवश्यक है जीवन की। किन्तु यदि जीवन में विवाह से भी ज्यादा अनिवार्य और

[147] वही, पृ- 88
[148] वही, पृ- 89

महत्त्वपूर्ण कुछ और हो तो पहले वह किया जाना चाहिए।"[149] आगे वह अपने पिता के सवालों के जवाब बहुत ही तार्किक ढंग से देते हुए कहती है "लेकिन पिताजी! क्या उम्र होने पर विवाह कर देने मात्र से ही जिम्मेदारी पूरी हो जाती है माता-पिता की अपनी संतानों के प्रति? उनके बच्चे सम्मान और स्वाभिमान से जिएँ, क्या यह सुनिश्चित करना जिम्मेदारी नहीं है उनकी?"[150]

एक स्त्री चाहे तो नए उम्मीद और रोशनी के साथ अपने कन्धों पर जिम्मेवारी लेकर अपने देश और समाज को नए सिरे से उजागर कर सकती है। विवाह के आलावा भी स्त्री के पास बहुत कुछ है ओर भी करने के लिए। इसी नई सोच के साथ लेखक ने रजनी जैसे चरित्र का अंकन करते हुए उसके साथ-साथ चलते हैं और उसके माध्यम से कहते हैं कि "नहीं, फिलहाल मेरे लिए विवाह से ज्यादा जरुरी है कि आपकी गलतियों के लिए प्रायश्चित करूँ मैं और उन दलित-पीड़ित लोगों से माफी माँगकर उनके गुस्से और आक्रोश को ठंडा करने की कोशिश करूँ, जिनको अपने सताया है। आपके द्वारा किए गए अत्याचार और गुनाहों के कारण अपने माथे पर लगे कलंक को ढोने का यही एक उपाय है। शायद तब ये लोग हमें स्वीकार कर पाएँ और हम भी सबके साथ मिलकर जी सकें। हमारा अस्तित्व उनकी स्वीकृति में है। यदि हमने प्रायश्चित नहीं किया, यदि हमने उनसे माफी नहीं माँगी, तो वे स्वीकार नहीं करेंगे हमें और समाज के बीच जीना कठिन होगा हमारा।"[151] रजनी की इन्हीं बातों ने ठाकुर हरनामसिंह को हृदय परिवर्तन करने के लिए विवश किया जिससे उनका हृदय परिवर्तन होता है और वह हवेली छोड़ कर साधारण लोगों की तरह रहने लगते हैं।

सभी गैर-दलित एक समान नहीं होते हैं और रजनी इसी का अपवाद है। वह गैर-दलित होते हुए भी मानवीयता गुण के कारण दलितों के साथ सहानुभूति रखते हुए उनके दुःख में दुखी होता है। समाज में फैली असमानता, अमानवीयता पर उसको भी आक्रोश और गुस्सा आता है। इसलिए वह सुक्खा और रमिया के दुःख को देखकर कहती है कि "इतने कष्ट में हैं आप और मुझे पता तक नहीं। चन्दन तो दूर है लेकिन मैं तो कितना पास थी। और मातापुर से भी लोग आते-जाते रहते हैं यहाँ, आपने किसी के हाथों खबर ही भिजवा दी होती मुझको। क्या मुझ पर भोरसा नहीं है आपको?"[152] ऐसा नहीं है कि रजनी सिर्फ विद्रोही है बल्कि अपने पिता द्वारा किया गया कार्य से लज्जित भी है। इसलिए चन्दन के माता-पिता की जिम्मेदारी को अपना

[149] वही, पृ- 96
[150] वही, पृ- 96
[151] वही, पृ- 97
[152] वही, पृ- 104

मानती है। चन्दन का मिशन किसी भी तरह से न रुकने पाए इसके लिए वह एक अच्छी दोस्त तथा अच्छी मनुष्य होने की जिम्मेदारी बखूबी निभाती हुई उसके माता-पिता को अपनी माता-पिता मानती हुई अधिकार भाव से कहती है "तो फिर मेरी बात मानिए और चन्दन के पास जाने का विचार त्याग दीजिए आप लोग। दलित लोगों को शिक्षित करने में लगा है चन्दन, उनको न्याय और समानता दिलाने के लिए संघर्स कर रहा है वह। गाँव-गाँव, शहर-शहर समानवादी आन्दोलन की जो चिंगारी सी दिखाई देती है, चन्दन ने ही जन्म दिया है इसको, वही अगुवाई कर रहा है इस आन्दोलन की।...आज सामाजिक क्रांति का प्रतीक बन गया है चन्दन।...समाज से अन्याय और असमानता को मिटाकर सवर्ण-अवर्ण, सछूत-अछूत, अमीर-गरीब और मालिक-मजदूर सबको एक सामान धरातल पर लाने तथा समाज में खुशहाली और भाईचारा बढ़ाने के लिए कार्य कर रहा है चन्दन। आपके वहाँ जाने से उसका ध्यान इन कार्यों की ओर से हटकर आप पर केन्द्रित हो सकता है और मैं नहीं समझती कि इससे आन्दोलन प्रभावित हुए बिना रहा सकेगा।"[153] आन्दोलन से क्या होता है जानती समझती है रजनी तभी तो वह चन्दन के आन्दोलन में अपनी भागीदारी का महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह एक प्रेरणा के रूप में हर हाल में चन्दन का साथ देती है। शिक्षित मानव अपने लिए ही नहीं लड़ता बल्कि समाज में फैले बुराइयों के खिलाफ भी लड़ता या खड़ा होता है। इसी प्रकार रजनी भी शिक्षा प्राप्त करने के बाद सामाजिक बुराइयों के खिलाफ खड़ी होती है।

प्रेम में तो त्याग ही किया जा सकता है और रजनी ने भी प्रेम के लिए अपने को न्यौछावर करती है, तभी तो वह चन्दन से कहती है कि "तुम्हारे आने वाले पत्रों को पढ़ते-पढ़ते और तुमको पत्र लिखते-लिखते तुम्हारे परिवार के कितना नजदीक आ गई हूँ मैं और कितना अपनापन-सा हो गया है मुझे तुम्हारे परिवार के साथ, उतना गाँव में शायद किसी और को न मालूम हो। तुम्हारी माँ और बापू की सेवा करने में मुझे कितना सुख मिलाता है यह तुम नहीं जान सकते।"[154] रजनी समानता के पक्षधर है वह समानता के अधिकार को समझती है। प्रेम के दायरे उसके दायित्व तथा महत्त्व और उसकी भावनाओं की कद्र करती हुई चन्दन से कहती है "जो आग तुम्हारे अन्दर है वह मेरे अन्दर भी है चन्दन! अन्याय और शोषण के खिलाफ मैं भी हूँ। मैं भी सबको सामान और खुशहाल देखना चाहती हूँ और इसलिए तुम्हारे आन्दोलन के साथ भी जुड़ी हूँ मैं। मेरी कोशिश होगी कि मैं अपने दायित्व का निर्वाह पूरी निष्ठा और ईमानदारी से कर सकूँ...और मैं चाहती हूँ कि सामाजिक नवनिर्माण के इस पवित्र अभियान में मैं भी तुम्हारे साथ

[153] वही, पृ- 105

[154] वही, पृ-114

कंधे से कन्धा मिलाकर चलूँ।"[155] आखिर में रजनी उदारवादी दृष्टि से आंबेडकर की जाति का उन्मूलन के लिए अंतर्जातीय विवाह के सिद्धांत को चरितार्थ करती हुई चन्दन से कहती है "कमला के बच्चे को भी अपने साथ ले चलें हम। पिता का प्यार तुम देना, माँ का प्यार मैं दूँगी उसे। अनाथ नहीं रहेगा वह।"[156] वस्तुतः रजनी ने अंबेडकरी विचार रखते हुए चन्दन के मिशन को आगे बढ़ाने के लिए वह कहीं से भी पीछे नहीं हटती है। जिस प्रकार हर भारतीय नारी अपनी जीवन साथी का प्रेरणा बनकर उसका मार्ग प्रशस्त करती है, जिस प्रकार कस्तूरबा ने गाँधी के हर हालत में साथ देती थी उसी प्रकार रजनी ने भी चन्दन का अंत तक साथ देती है।

मास्टरानी : मास्टरानी, दिनबंधु दुरिया की धर्मपत्नी और ललटू की माँ एक दलित महिला है। दिनामास्टर की तरह वह भी पढ़ी-लिखी महिला है, उसे नौकरी मिल सकती थी। लेकिन वह अपने परिवार के लिए अपने अरमानो का त्याग कर देती है। प्रारंभ में वह बिडी धुंगिया पुरोहित बाबा के कहने से कुछ प्रथाओं में विश्वास करती है, जो उसे उच्च जाति से विरासत में मिली होती है। चूँकि संस्कारिता की प्रक्रिया उच्च जातियों की नक़ल कर रही होती है। उसके बाद वह मंदिर में पूजा करने के लिए जाती है, व्रत रखती है, वगैरह-वगैरह जो प्रथाएं हैं वह सब करती है। उनको लगता है कि ललटू को वह शिव जी के वरदान से प्राप्त किये हैं। जिसके लिए वह ललटू को देर रात तक भवानीपाटणा से जब नहीं लौटता है। तब अपने बच्चे के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की शंका-आशंकाएं से दूर रखने के लिए देवी माँ से विनती करते हुए कहती है "माँ 'ठुटी माएली', बेटा मेरा सही सलामत घर लौट आये। आने वाले दियाल यात्रा को भूरे रंग की बकरी तेरे लिए बलि चढ़ाउंगी। मेरे बेटे के साथ कुछ अनिष्ट न हो।"[157] उसके गाँव के भीरु जब उनसे कहता है कि ललटू का कुछ नहीं हुआ है वह सही है और भवानीपाटना जेल गया है। तब अपना लड़का सही है सुन कर वह अपने को आश्वस्त करती है और कहती है क्यों वह जेल गया है, तो बीरू कहता है आप नहीं जानते हैं क्या कल मंदिर प्रवेश को लेकर दो गोष्ठी में झगडा हुआ है, जिसमें कुरूपा का सर फटा है, उन्हीं लोगों को लेकर ललटू जैल गया है। यह बात सुन कर मास्टरानी सोचने लगती है की वह भी पहले मंदिर में पूजा करने के लिए जाती है मगर उसे पूजा करने की अनुमति नहीं दी जाती, वह गर्भगृह में नहीं जा सकती है। यह एक विडम्बना बोध है - दलितों के लिए।

---

[155] वही, पृ- 114

[156] वही, पृ- 128

[157] 'भेद', पृ- 62

मास्टरानी एक सपाट चरित्र नहीं है बल्कि एक गोल पात्र है। वह हमारे सामने विद्रोह करती हुई एक मजबूत चरित्र के रूप में उभरती है। गाँव के उर्कुली और फेदो के शिव मंदिर प्रवेश को मना करते हुए जब उस गाँव के शंकर जमींदार ने माँ-बहन की अश्वलील शब्दों में गाली दी, तब वह उसकी निंदा करती हुयी, अचानक गर्जन करती हुई कहती है "तेरी माँ-बहन को अगर कोई गन्दी गाली दे तो क्या तू उसे न मार कर ऐसे ही छोड़ देगा? कौन छोड़ देता? अगर वह माँ का बेटा होगा, तो छोड़ देगा? मुना सुबह जो बोल रहा था, शंकर को तो जिन्दा जला देना चाहिए था...।"[158] यह कहते हुए मास्टराणी एक योद्धा की तरह दिखती है।

बीरू के जाने के बाद मास्टरानी कुछ सोचने लगती है तब उन्हें मुना का खून से लथपथ चेहरा और कुरुपा का हँसता हुआ मुँह याद आती है। तब वह अपने को सुनाते हुए कुछ-कुछ कहने लगती है। शाम को कोई बोल रहा था की बेहेड़ा के डोम साई की बस्ती को गाँव वालों ने जला दिया है। वे कई बार गाँव में घुमाने के लिए गई है इसलिए मन ही मन कहने लगती है किस-किस का घर जला दिए हैं? कुरूपा, धनु और देव इन सबका क्या? सभी का छोटा-सा मिटटी का घर है, मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। मुना का घर? अगर मुना का घर जला दिए होंगे तो बेचारी विशाखा दीदी दो-दो छोटे-छोटे बच्चों को लेकर कहाँ जायेंगी? मुना ने शास्त्री चौक में सिलाई की जो दुकान लगवायी थी उसको भी वो लोग जला दिये हैं जिससे उनका परिवार चलता था।' ये बातें सुन कर मास्टरानी कहती है 'मुना उन लोगों का क्या बिगाड़ा था, अगर कुरूपा ने उस शराबी शंकर को मुक्का मारा तो कुरूपा को दो-चार मुक्का मार लेते वो लोग। इससे उनका लोगों के प्रति संवेदनशीलता का भाव दिखाई देता है।

आगे वह विचार मग्न होते हुए सोचने लगती है कि 'कुरूपा क्यों शंकर को मारता है? उसके माँ-बहन को उस शराबी ने गाली दी इसलिए न! डोम लोग को मंदिर में जाने के लिए मना करने वाला कौन है वह? महादेव क्या उसके बाप की जायदाद है?' 'डोम औरत ने क्या उसके घर के पीच्छे पैखाना थोड़े ही किया था जो कि तू उन्हें ऐसी गाली देगा। कौन-से शास्त्र में लिखा है कि डोम मंदिर में नहीं जा सकता है? उस शास्त्र को तुमने लिखा है या तुम्हारे बाप ने या तेरे पहले की पीढ़ी वालों ने लिखा है। हरामजादा शास्त्र दिखा रहा है!' इसके बाद उन्होंने उसकी भर्त्सना करते हुए, हम क्या शास्त्र नहीं पढ़े हैं कहती हुई ओड़िया कवि बलराम दास का 'लक्ष्मी-पुराण' का हवाला देते हुए महाप्रभु बलराम की कथा सुनाते हुए कहती है कि "बलराम ने

---

[158] वही, पृ- 64

चंडालिनी की निंदा की थी इसलिए भिक्षा का कटोरा थाम कर उन्हें घर-घर भिक्षा मांगनी पड़ी थी। यह बात क्या शास्त्र में नहीं लिखी है?”[159]

आगे वह शंकर की भर्त्सना करते हुए यह भी कह देती है कि ‘तेरे दादा बेचारे अच्छे थे, स्वर्ग में हैं, कितनी जायदाद बना के गए हैं। पर उसका बेटा, तेरे बड़े बाप, सुग्रीब गाँव के बहू-बेटी को रास्ते में चलने नहीं दे रहा था। भगवान क्या इतना पाप सहते इसलिए सांप बन कर काटे उसे, वह मरा नहीं गाँव से एक पापी गया है, और तेरे बाप विभीषण क्या कम है! इसे मार उसको पकड़, उसके पके खेत उजाड़ना उसका काम था। इतने सारे पाप को हजम करना क्या छोटी बात है, आधी उम्र में ही शराब, गांजा उसे खा गया। उसके बाद भी तू नहीं सुधरा ‘लक्ष्मीछड़ा’[160], मैंने नहीं देखा किया हात में कटोरा लिए कल सेमी सेठ के पास पांच रुपये के लिए गिडगिडा रहा था। तू बोल रहा है डोम को मंदिर जाना मना है? शास्त्र में लिखा है! तेरे उस शास्त्र के ऊपर थूकता हूँ मैं...थू...।’ और सचमुच थूक देती हैं वह थूक शास्त्र में न जाकर दीवार पर गिरता है। ऐसा करके मास्टराणी प्राकृतिक स्थिति में दिखाई देनी लगती हैं।

फगनू की माँ : फगनू के माँ के बाल खुले हुए हैं, गले में फूलों की माला, हाथ में सिंदूर लगा हुआ त्रिशूल। जीभ निकाल कर आँखें बड़ी-बड़ी कर वह सबके आगे-आगे चल रही थी। पीछे-पीछे चैत्र के घड़े सिर पर रख कर चार लड़कियां, पुजारी बूढ़ा और ढोल बाजा के साथ-साथ गाँव वाले चल रहे थे।

चैत्र के महीने में धूप बहुत ज्यादा होती है, घर-घर चैत्र मास का घड़ा घुमाया जाता है। चैत्र महिना की यह घड़ा जिसके घर पहुँच रहा था, उस घर की बहू-बेटी अगरबती, हल्दी, चावल आदि लगा कर आरती कर रही थी। फगनू की माँ यानि ‘ठुटी माएली’उन सबकी सिर पर त्रिशूल लगा कर आशीर्वाद दे रही थी। जिस समय फगनू की माँ यानी ठुटी माएली बनवास की लड़की कौकी के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दे रही थी, तभी अचानक ललटू कहीं से आकर फगनू की माँ... फगनू की माँ कहाँ पर है? कहने लगते ही उसके हाव-भाव देख कर सभी लोग व्यग्र होकर एक के बाद एक ललटू से पूछने लगते हैं कि क्या हुआ? क्या हुआ है? तब ललटू हाँफते हुए कहता है कि ‘फगनू को पीपल के नीचे नाग सांप ने काटा है...।’ लोग जैसे ही हौ-हाला करते हुए उधर भागते हैं तब फगनू की माँ भी सब कुछ फेंक कर उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगती है। जाकर देखते हैं तो फगनू पेट भर शराब पी कर एक कुत्ते के साथ हिंदी में बातचीत

---

[159] वही, पृ-65

[160] देवी लक्ष्मी जिससे रूठी हो यानि धन का क्षय होना ।

कर रहा है। ‘फगनू क्या हुआ? क्या हुआ? बोलने पर कुत्ता बोल रहा है कियों...कियों...कियों! तब सब लोग यह देख कर हंसने लगते हैं। उस दिन पता चलता है की फगनू की माँ के शरीर में ठुटी माएली का प्रवेश करना झूठ है। अगर ऐसा होता तो वह अपने बेटे की बात सुन कर ऐसा कभी नहीं भागती। इस चरित्र के माध्यम से रचनाकार ने दलितों में फैली अंध-भक्ति को दिखाने के साथ-साथ उसको दूर करने का भी प्रयास किया है साथ ही उस चरित्र के माध्यम से दलितों के आचार-विचार तथा संस्कृति को भी दिखाने की कोशिश की है।

2.3.2 पुरुष-पात्र

मिश्र आज्ञा :- मिश्र जी जईतपुर स्कूल के हेडमास्टर हैं, एक दिन ड्रील क्लास के उपरांत, स्कूल में सरस्वती पूजा के लिए स्कूल के बच्चों की सभा बुलाये थे। सभा का विषय था कौन सी कक्षा का बच्चा कितना चंदा देगा और पूजा के दिन भोग में खाने के लिए सेव, बूंदी या पूरी-खीर बनेगा, इत्यादि। उसके बाद चंदा की बात करते हुए मिश्र जी ने बच्चों से यह कहते हैं कि पूजा में जो ज्यादा चंदा देगा उसको यजमान बनाकर बिठाया जायेगा। तब तेली साही के सुरथ साहू के लड़का बृंदा ने अपना हाथ उठाकर दस रुपया देगा बोलते ही मिश्र जी ने उसे शाबाशी देते हुए कहा है कि उससे ज्यादा कौन चंदा देगा, तब ललटू यानी लालातेंदु दुरिया ने पंद्रह रुपया कह कर अपना हाथ उठाया, तब मिश्र जी ने कटुता के साथ जो कहा वह एक शिक्षक होने के नाते उनके मुँह से इस तरह की बातें कितना शोभनीय और नैतिक है यह साफ दिखाई देती है कि वह किस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में द्रोणाचार्य की परंपरा को कायम रखना चाहते हैं, ये उन्ही की बातों से स्पष्ट झलकता है। उदाहरण के तौर पर निम्नलिखित वाक्यांश को देख सकते हैं-

“पंद्रह छोड़ कर पचास देने से भी, तुझे पूजा में यजमान के रूप में बैठा नहीं सकते। तू बैठ जा!”[161] आगे जाकर अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कहना है कि “समझ में नहीं आ रहा है मैं ऐसा क्यों बोला? अरे, इसमें समझाने की क्या बात है? डोम लोगों के हाथों से हम आदमी पानी नहीं पीते हैं, और देवी सरस्वती प्रसाद कैसे ग्रहण करेंगी?”[162] स्कूल ज्ञान का मंदिर होता है और शिक्षक उस मंदिर के पुजारी। पर ज्ञान के मंदिर के पुजारी से इस तरह की बातें कितनी शोभा देती हैं और उन्हीं से अगर बच्चों का शोषण होना शुरू हो जाये तो किसे क्या बोला जा सकता है?

[161] वही, पृ- 77
[162] वही, पृ- 77

जब इस तरह की बातें खुद शिक्षक करता है तो बच्चे और क्या कर सकते हैं? स्कूल जैसे ज्ञान के संस्थान में इस तरह शोषण की प्रक्रिया चल रही है। यह सिर्फ इस उपन्यास या मिश्र और ललटू के बीच की बात नहीं है न जाने कितने दलित बच्चों के साथ ऐसे मानसिक अत्यचार आज भी हो रहे हैं। जिसके कारण बहुत से दलित बच्चे शिक्षा ग्रहण करना जैसे मौलिक अधिकार से वंचित तथा दूर भाग रहे हैं। इस उपन्यास में हेडमास्टर मिश्र के जरिए द्रोणाचार्य की परंपरा को दिखाया गया है।

2.3.3 बाल, किशोर, युवा और वृद्ध-पात्र

युवराज : युवराज जईतपुर जमींदार दनार साहू का भतीजा है। ललटू से पांच साल बड़ा है, मैट्रिक पास करने के बाद भवानीपाटना कॉलेज में पढ़ता था। गर्मियों की छुट्टियाँ में गाँव आया हुआ था। दूसरों की तरह ललटू भी वाया वकील द्वारा बनाया गया शाखा में जाता है और युवराज भी वहां आता रहता है। एक दिन शाखा बंद रहने के कारण ललटू अपने दोस्तों के साथ घर लौट रहा था कि पीछे से युवराज उसको बुलाता है और किनारे में ले जाकर उसके कान में कुछ गुप्त बात कहता है 'अगर मेरा एक काम करगे तो मैं तुझे पांच आम दूंगा।' 'किसी को नहीं बोलना, अगर कोई और जान जाएगा तो दिक्कत है।'

युवराज ने इस तरह आम का लालच दिखा कर ललटू को अपनी जेब से एक कागज़ निकाल कर जल्दी से उसकी कमीज के जेब में रख दिया और बोला 'मंजुला को दे देना है।' अंधेरे में भी उसकी हंसी साफ़ दिखाई दे रही थी। 'ख़त! क्यों?' ललटू के स्वर में जिज्ञासा और आश्चर्य था। तब युवराज उससे लालच दिखाते हुए कहता है कि 'तू बच्चा है। समझ नहीं पायेगा। कल शाखा में आते वक्त तेरे लिए आम लाऊंगा।

अगले दिन ललटू शाखा को जाते हुए अपने मन ही मन सोच रहा था कि 'आज युवराज शाखा में न आये... आज युवराज की तबियत ख़राब हो जाए...आज युवराज मर जाए...!' लेकिन युवराज भी उस दिन शाखा में आया हुआ था और ललटू का इंतज़ार कर रहा था। तब तक शाखा के कोई भी मुख्य शिक्षक या कार्यकर्ता नहीं आये थे। ललटू ने साफ़-साफ़ कह दिया है कि उसने उस ख़त को फाड़ कर चूल्हे में फैंक दिया है। जिसमें दो लाइन में लिखा रहता है "पहला 'आई लव यू' और दूसरा 'योर लवर युवराज'।"[163] यह, वह इसलिए ऐसा करता है क्योंकि उसको यह बात गलत लगती है। यह बात सुनते ही युवराज ने उसके बायें गाल पर एक

---
[163] वही, पृ- 27

मुक्का मारता है, वह गिरते-गिरते संभल जाता है और उसकी आंखें पानी से भर जाती है। जब युवराज ने दूसरी बार मुक्का मारने की कोशिश की तब उसने वहां पर पड़ी ध्वजारोहण करने वाली लाठी उठाकर उसके हाथ पर जोर से दे मारी और अपने घर की तरफ भागने लगा।

ललटू और युवराज का यह झगड़ा आगे विकराल रूप ले लेता है। जमींदार दनार साहू के कहने पर तेली साई के कुछ लोग हाथ में लाठी, कुल्हाड़ी लिए दिनामास्टर के घर पहुँच कर चिल्लाने लगते हैं आखिर में झगड़ा को न बढाने के लिए दिनामास्टर को पंचायत की राय के मुताबिक आर्थिक मुआवजा देना पड़ता है। यह बात ठीक प्रेमचंद के 'गोदान' के मातादीन और सिलिया की कहानी को दहराने जैसा ही है। इससे यह भी भासित होता है कि विशेषाधिकार प्राप्त जातियों के पुरुषों को अछूत महिलाओं के जिस्म पर अविवादित अधिकार हासिल है, परन्तु वहीँ अछूत जाति के कोई लड़का अगर अपनी बचाव में कुछ कर दे तो महापाप है। जो उपन्यासकार ने युवराज के चरित्र के माध्यम से भारतीय समाज-व्यवस्था को दिखाने का प्रयास किया है।

ललटू : ललटू दिनबंधु दुरिया और मास्टरानी का बेटा और इस उपन्यास का नायक है। शुरू में जईतपुर स्कूल में चौथी कक्षा से लेकर छठी कक्षा तक प्रथम स्थान में आता है। इसलिए सातवीं कक्षा के बोर्ड परीक्षा में वह ए+ ग्रेड में पास करेगा ऐसा स्कूल के सारे शिक्षक अनुमान कर रहे थे। अगर वैसा नहीं भी हुआ तो 'ए' ग्रेड निश्चिंत है। 'ए+' ग्रेड में पास करने से उसको भवानीपाटना ब्रजमोहन हाई स्कूल में पढ़ाएंगे ऐसा उनके पिताजी दिनामास्टर सोचे थे। लेकिन उसने अपने गाँव के लड़की मंजुला के सामने कसम खायी थी कि अगर उसके पिताजी मार डाले तो भी वह भवानीपाटना नहीं जायेगा। मंजुला उसकी सबसे अच्छी दोस्त और बहुत सुन्दर लड़की थी। ललटू कक्षा में प्रथम आता था और वह द्वितीय, पर ललटू से मंजुला जलती नहीं थी। घर से अमृद, बेर आदि छुपा के लाकर ललटू को देती थी। दोनों सातवीं कक्षा के बाद बेहेड़ा के दंतेश्वरी हाई स्कूल में पढ़ाई करेंगे ऐसा उन्होंने सोचा था। इसी मंजुला को लेकर ललटू और युवराज के बीच झगड़ा होता है, जिसके फल-स्वरुप युवराज को अपनी जाति में फिर से वापस लेने के लिए दिनामास्टर को पंचायत के नियम के अनुसार आर्थिक मुआवजा भरना पड़ा था।

सातवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा का रिजल्ट आया जिसमें उसको ए+ ग्रेड की जगह सी-ग्रेड मिलता है। पिताजी की मार के भय से वह कहीं कोने में छुप जाता है, कुछ देर बाद जब वह बाहर आंगन में आता है। तब पिताजी के नजर उसके ऊपर पड़ जाती है, वह किताब से अपनी नजर उठाकर खुद को सुनाते हुए बोलने लगते हैं 'कुलांगार कहीं का!' और फिर किताब के ऊपर

नजर डालते हैं। उसके बाद तो एक सप्ताह तक बाप-बेटे में बातचीत नहीं होती, ललटू खुद से एक दो बार बात करने की कोशिश किया परन्तु वे कुछ कहे भी नहीं। जो बाप उसको इतना प्यार कर रहे थे वही बाप आज उसके मुँह को भी नहीं देख रहे थे। उस वक्त उसने सोचा कि मैं मर जाता तो अच्छा होता! अपराधी होने की सोच ने उसे उदास कर दिया।

मैट्रिक पास करने के बाद भवानीपाटना गवर्नमेंट कॉलेज में युक्त दुई पढ़ रहा था, किन्तु फेल यानी वह परीक्षा ही नहीं दिया था। पढ़ाई-छोड़ने के बाद उसने अपने दोस्त कार्तिक पटा के साथ मिल कर जंगल के प्राकृतिक संसाधनों की कार्पोरेट लूट, पर्यावरणीय गिरावट रोकने के लिए, 'साहाजखोल जंगल सुरक्षा कमिटी' बनाया और स्वयं जंगल सुरक्षा कमेटी का सभापति बन जाता है। तब ललटू में एक अलग चेतना देखते हैं। वह न केवल एक दलित आंदोलन का आयोजन करता है, बल्कि अन्य मुद्दों से भी निपटता है, जैसे जंगलों को संरक्षित किया जाना चाहिए, और जो भ्रष्टाचार का हिस्सा हैं, उन्हें जांचना। लैंगिक न्याय को पाना है। इससे पता चलता है कि दलित अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए तैयार हैं और समानता के लिए दावा करते हैं- पीड़ित के रूप में नहीं बल्कि एक लड़ाकू के रूप में। जब पंगनिया बूढ़ा ने बाया वकील के कहने से उसके घर आकर उनके अटकाए गए ट्रक को छोड़ने के लिए कहता है और जब ललटू उनकी यह बात नहीं मान रहा है देख कर वह कहते हैं कि 'समुद्र में रह कर मगरमच्छ से दुश्मनी करने से पछताना पड़ेगा, बाबा तू बच्चा है।' तब ललटू उस पंगनिया बूढ़ा का तिरस्कार करते हुए कहता है "मुझे क्या समझा रहे हो दादा? आपको समझना चाहिए, आप बुजुर्ग हैं। मगरमच्छ को बिना मारे पानी में घर कैसे बना सकते हैं? आप जाकर वाया वकील से बोल दीजिए, वह जो कर सकता है करें, हम कभी भी जब्त किये हुए पेड़ नहीं छोड़ेंगे चाहे मर भी जाएँ।"[164]

'साहाजखोल जंगल सुरक्षा कमिटी' के सभापति बनने से पहले ललटू ने धरमगड ब्लॉक के बी.डी.ओ. परमानंद बाग को मारा था। जिसके लिए उसे जैल में तेरह दिन रहना पड़ा था और उसको जिसने जेल से जमानत दिलवायी वह एक अनजान व्यक्ति थे, जिनका नाम संतोष पंडा है। वह दैनिक अख़बार 'हस्तक्षेप' के जिला प्रतिनिधि है। जिस दिन 'हस्तक्षेप' पत्रिका के प्रथम पृष्ठा पर यह खबर छपी की "दुर्निंतिग्रस्थ बी.डी.ओ. को थप्पड़, युवा समाजसेवी जेल में।"[165] इसके बाद एक 'समाजसेवी के रूप में अपने आप उसका परिचय बन गया। अशिक्षित, डरे हुए

[164] वही, पृ- 42
[165] वही, पृ- 37

लोग, मजदूरी करने वाले लोग उसके ऊपर विश्वास करने लगे। वह भी उनके सुख-दुःख में जितना हो सकता था उतना मदद करता था। उसके बाद उसने 'किसी के शरीरी में से बुखार नहीं निकल रहा है उसको साईकिल पर बैठा कर अस्पताल दौड़ना, बारिश में किसी के घर की दीवार गिरी है तो वह अर्जी लेकर ब्लाक ऑफिस पहुंचा तो, कभी बकरी के लोन के लिए बैंक से कोई बार-बार लौटा तो उसने जाकर बैंक मैनेजर से बात किया तो कभी किसी गर्भवती स्त्री को खून की जरुरत पड़ी है तो बिना बुलाये वह वहां भी पहुँच जाता है।'

ओड़िशा में जातिगत वर्चस्व का हिस्सा, संस्कृति, संसाधन, एकाधिकार, उसकी शक्ति, रोजगार, नौकरी आदि का अवसर उच्च जाति के सवर्ण हर लेने की कोशिश कर रहे हैं। उसकी आलोचना करता है और इस बात पर बहस लाता है कि कौन बाहरी हैं और कौन अंदरूनी। ललटू को डॉ. अंबेडकर की राजनीतिक विचार ज्ञात है, इसलिए वह गाँव के पंचायती चुनाव के लिए अपने ही समुदाय के बी.ए. फेल रघु मेहेर को खड़ा करवाता है और चुनाव से पंद्रह दिन पूर्व गाँव-गाँव में मीटिंग करके लोगों को समझाता है कि "कहीं से उड़ कर, आकर हमारे इलाके में पत्थर बन कर बैठा है, क्या हम उसकी पूजा करेंगे? हम लोग क्या उसे राजा बनायेंगे।"[166] उसके इस बात से 'गाँव के अनपढ़ लोग भी बोलने लगते हैं, हाँ, हाँ सही बात है, सही बात है।'

ललटू की धर्म की आलोचना दिलचस्प है। वह तर्कवादी रुख को मानता है, वह न केवल हिंदू धर्म की आलोचना करता है, बल्कि दलित समुदाय में पूजा के तरीकों में चन्दन की तरह अंधविश्वास भी करता है। उसका चरित्र अंबेडकर की तरह चित्रित किया गया है। जिस तरह से अंबेडकर हिंदू धर्म की आलोचना करते हैं। उसको पता है कि दलितों को किस तरह की शिक्षा दी जानी चाहिए। उसका चरित्र वास्तव में न केवल हिंदू धर्म बल्कि दलित समुदायों के रूढ़िवाद की आलोचना करने की कोशिश करता है उन्हें जगाने की भी कोशिश करता है। उदहारण के तौर पर-

चैत्र के महीने में धूप बहुत ज्यादा होती है, घर- घर चैत्र मास का घड़ा घुमता है। चैत्र महिना का यह घड़ा जिसके घर पहुँच रहा था, उस घर की बहू-बेटी अगरबती, हल्दी, चावल आदि लगा कर आरती कर रही थी। फगनू की माँ यानि 'ठुटी माएली' उन सबकी सिर पर त्रिशूल लगा कर आशीर्वाद दे रही थी। जिस समय फगनू की माँ यानी ठुटी माएली बनवास की लड़की कौकी के सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दे रही थी, तभी अचानक ललटू कहीं से आकर फगनू की माँ... फगनू की माँ कहाँ पर है? कहने लगते ही उसके हाव-भाव देख कर सभी लोग

[166] वही, पृ- 49

व्यग्र होकर एक के बाद एक ललटू से पूछने लगते हैं कि क्या हुआ? क्या हुआ है? तब ललटू हाँफते हुए कहता है कि 'फगनू को पीपल के नीचे नाग सांप ने काटा है...।' लोग जैसे ही हौ-हल्ला करते हुए उधर भागते हैं तब फगनू की माँ भी सब कुछ फैंक कर उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगती है। जाकर देखते हैं तो फगनू पेट भर शराब पी कर एक कुते के साथ हिंदी में बातचीत कर रहा है। 'फगनू क्या हुआ? क्या हुआ? बोलने पर कुत्ता बोल रहा है कियों...कियों...कियों! तब सब लोग यह देख कर हंसने लगते हैं। उस दिन पता चलता है की फगनू की माँ के शरीर में ठुटी माएली का प्रवेश करना झूठ है। अगर ऐसा होता तो वह अपने बेटे की बात सुन कर ऐसे कभी नहीं भागती।

दूसरी बार उसने धार्मिक आलोचना तब की जब वह पांचवी या छठी कक्षा में पढ़ रहा था, तब कक्षा के हेडमास्टर मिश्र जी ने सरस्वती-पूजा के लिए कौन कितना चंदा देगा और जो ज्यादा देगा उसको पूजा में 'यजमान' किया जायेगा, ऐसा बोल रहे थे तब ललटू ने पंद्रह रूपये देगा कह कर अपना हाथ उठाया तब मिश्र जी उससे यह कहते हुए बैठने को कहते हैं कि "पंद्रह छोड़ कर पचास देने से भी, तुझे पूजा में यजमान के रूप में बैठा नहीं सकते। तू बैठ जा!"[167] मिश्र जी के मुँह से यह बात सुन कर ललटू ने अपनी माँ से तर्क किया था कि "मिश्र महाशय की बुद्धि ख़राब है तू बोल रही है माँ, उन्हें वह खराब बुद्धि कहाँ से मिली? उनको वैसी बुद्धि गणेश ही दिये होंगे न? तू भी बोलती है, पिताजी भी बोलते हैं, गणेश बुद्धि दाता है! वैसे बुद्धि दाता का गला दबा देना चाहिए।"[168]

भारत में इस तरह की पूछताछ की एक लंबी परंपरा है, लोकायतन से शुरू होकर दर्शन का एक प्राचीन भारतीय स्कूल जो साम्राज्यवाद और संशयवाद को गले लगता है उसको देख सकते हैं।

[167] वही, पृ- 77
[168] वही, पृ- 78

तृतीय अध्याय

विवेच्य उपन्यासों में रचनाकार की लेखन का उद्देश्यपरक अध्ययन

उपन्यास विधा साहित्य का सबसे ज्यादा लोकतांत्रिक और यथार्थवादी साहित्यिक विधा है। समकालीन दौर में हिंदी और ओड़िया भाषा के साहित्य में दलित-विमर्श ने एक मुकाम स्थापित किया है। इस विधा को सुदृढ़ करने में हिंदी में जयप्रकाश कर्दम और ओड़िया साहित्य में अखिल नायक का विशेष महत्त्व है।

उन्होंने जिन विषयों पर उपन्यास में बात की है, उसे कविता कहानी या लघुकथा में कहना या लिखना संभव नहीं होता। वे निश्चित रूप से तथ्य और कथ्य दोनों डाल रहे हैं, लेकिन साथ ही वे उन मुद्दों को भी सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं, जो हिंदी और ओड़िया की सदियों से चली आ रही साहित्यिक परंपरा से पूर्ण रूप से भिन्न है। परंपरा से चले आ रहे साहित्यकारों ने अपने साहित्य में इस सवाल या मुद्दों को पहले भी उठाया है, लेकिन वहाँ दलितों को हमेशा पीड़ितों के रूप में चित्रित किया जाता रहा है तो कहीं नम्र, विनम्र और असहाय रूप में। हिंदी में गैर-दलित कथाकारों में प्रेमचंद के 'रंगभूमि', ओड़िया साहित्य के गैर-दलित कथाकारों में बसंत सत्पथी, कन्हुचरण महान्ति के 'शास्ति' और गोपीनाथ महान्ति के 'हरिजन' जिसमें मैला ढोने वाले समुदाय के बारे में दिखाया गया है, वहां पात्र लड़ाई नहीं करते हैं खुद शिकार बन जाते हैं। परन्तु जयप्रकाश कर्दम और अखिल नायक ने जिन विषयों पर उपन्यास में बात की है, और जिन मुद्दों को सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं, जो हिंदी और ओड़िया की सदियों से चली आ रही साहित्यिक-परंपरा से पूर्ण रूप से भिन्न है। उनके पात्र परंपरा से चले आ रहे साहित्यकारों के पात्रों के भांति कहीं नम्र, विनम्र और असहाय रूप में नहीं बल्कि विद्रोही के रूप में चित्रित किये गये हैं, जो गैर-दलित साहित्यकारों से उन्हें अलग करता है।

3.1. सामाजिक समस्या को इंगित करना :

दलित साहित्य सामाजिक समता, स्वतंत्रता और बंधुता के भाव लिए बुद्ध तथा अंबेडकर दर्शन से प्रभावित रचना है। दलित साहित्य ने दलित, दमित, स्त्री-पुरुष, आदिवासी आदि को वाणी दी है। दलित उपन्यासों में दलित जीवन की त्रासदी और वर्चस्ववादी सवर्ण मानसिकता तथा समाज की विभिन्न अनीतियों का पर्दाफास या चित्रण किया है। इसी तरह का कथानक 'छप्पर' उपन्यास में रचनाकार जयप्रकाश कर्दम ने बेबाकी से प्रस्तुत किया है। दलितों के

सामाजिक और आर्थिक स्थिति में न तो गाँव बदला है न ही शहर बदला है। थोड़े बहुत बदलाव के साथ आज भी दलितों के स्थिति वैसी की वैसी है। उदहारण के तौर पर कर्दम लिखते हैं "शहर में भी बहुत से दलित और दरिद्र लोग बिना छुकी-भुनी सब्जी खाते हैं या केवल पानी या चाय के साथ नमक की रोटियाँ गले से नीचे उतारकर जिन्दा रहते हैं। फाका भी रह जाता है बहुत से घरों में। यहाँ भी तन ढकने को कपड़ा नहीं है बहुत से लोगों के पास। यहाँ भी गाँव की तरह बच्चे रेत-मिट्टी में खेलते नंगे घूमते हैं।"[169] उनके मधुर भाषण, परस्पर सहयोग, एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और मान-सम्मान की भावना सब कुछ है इन लोगों में, उसके अलावा कुछ बुरी आदतें भी हैं। जिसके कारण वे दरिद्रता में जीवन-व्यतीत करते हैं। इसकी ओर लेखक ने इशारे किया है कि "सबसे बड़ी बुराई तो यही कि ये लोग जितना कमाते हैं उसका एक बड़ा हिस्सा दारूबाजी या जुए आदि में बर्बाद कर देते हैं। यद्यपि कुछ लोग इस व्यसन से मुक्त हैं किन्तु अधिकांश लोग इस व्यसन के शिकार हैं और यही कारण है कि रात-दिन कमरतोड़ मेहनत करके कमाने के बाद भी इनका जीवन-स्तर ऊपर नहीं उठ पाया है और हमेशा दूसरे के मुँह की ओर देखने वाले दीन-दरिद्र बने रहते हैं। देर रत तक शराब के नशे में धुत्त लोग अपने बीबी-बच्चों के साथ या आपस में ही एक दूसरे के साथ मारपीट, गाली-गलौज करते हैं।"[170]

'छप्पर' उपन्यास में चित्रित मातापुर गाँव को केंद्र में रख कर भारतीय गाँव में आज भी जातिवाद और वर्णव्यवस्था का जहर कितना गहरा है उसका परिचय कराया गया है। विषमता भरी मानसिकता के चलते एक पूरा मानव-समुदाय को किस प्रकार निराधार बनया जाता है उसकी वास्तविकता स्पष्ट की है। वर्णव्यवस्था और जातिवाद से गाँव का सारा समाज बाँटा हुआ है, गाँव के सवर्ण कहे जाने वाले ठाकुर, साहूकार जहाँ ऊँचे स्थान पर रहते हैं वहीं नीची कही जाने वाली तथा अवर्ण कही जाने वाले दलित लोग निचले स्थान पर रहते हैं। यह भारतीय समाज की वास्तविक सचाई है। सवर्ण समाज के लोगों ने हमेशा से दलितों को नीचा दिखने के लिए झूटी धर्म-शास्त्र का दुहाई देते हैं और काणा पंडित जैसे पात्रों से कहलवाते हैं कि "जरुरी था कि जूती की धूल जूती ही बनी रहे, माथे का तिलक न बन पाए।"[171]

सवर्ण समाज हमेशा से दलित-विरोधी रहा है जिसके लिए उसने अनेक दकियानूसी कायदे-कानून बना कर दलितों के आगे बढ़ाने का रास्ता रोका है। काणा पंडित और ठाकुर हरनामसिंह जैसे सवर्ण लोग हमेशा चन्दन जैसे दलित युवक को आगे बढ़ने से रोकना चाहते हैं।

---

[169] जयप्रकाश, कर्दम, 'छप्पर', पृ- 12

[170] वही, पृ- 15

[171] वही, पृ- 37

जैसा कि काणा पंडित चन्दन के शहर में जाकर पढ़ाई करने को 'महाअनर्थ' कहते हुए उसे वापस बुलाने को लेकर सुक्खा से कहता है "तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्म-शास्त्र से बड़ा नहीं हो सकता तू। अपमान करता है धर्म-शास्त्र का, वेड-वेदांगों का और पूछता है क्या हुआ, नास्तिक।...'प्रायश्चित करना पड़ेगा तुझे सुक्खा प्रायश्चित। जल्दी से अपने बेटे को शहर से वापस बुला और प्रायश्चित करने का उपाय कर।"[172] काणा पंडित के बातें सुनकर ठाकुर हरनामसिंह विनम्रता पूर्वक सुक्खा से कहते हैं कि "हम जानते हैं कि लड़का नई पीढ़ी का है, पढ़ा-लिखा है। कुछ ऊपर उठने और दो पैसा कमाने की इच्छा रखता हो, किन्तु उसके लिए अपनी धरती, घर-बार छोड़कर शहर जाने की क्या जरुरत थी।...इतनी सारी मिल्कियत फैली पड़ी है हमारी। हमें भी बहुत दिन से एक इमानदार और पढ़े-लिखे आदमी की जरुरत थी इस सबकी देखभाल और हिसाब-किताब के लिए। तुम्हारे बेटे से ज्यादा विश्वासपात्र आदमी और कौन मिल सकता है हमें। तुम उसे वापस बुला लो, सब दिक्कतें दूर हो जायेंगी तुम्हारी।"[173] इन सारी बातों को सुनने के बाद भी जब सुक्खा अपने बेटे चन्दन को वापस बुलाने के लिए अपनी असमर्थता दिखता है तब गुस्से में काणा पंडित कहता है "सुन लिया ठाकुर साहब। ये आलम हैं इन लोगों के। एक तो अनर्थ करता है ऊपर से मुँह लड़ने से भी बाज नहीं आता है। अछूतोद्धार का नतीजा है यह सब। और करो हरिजनों का उद्धार, और सिर चढ़ा लो इनको। अभी तो देखना हम सबके सिर पर मूतेंगे ये?"[174]

इस तरह के सवर्ण लोग अपनी झूठी प्रतिष्ठा और पूर्वाग्रह से इतना ग्रसित हैं कि दलितों के पढने-लिखने के विरोध में संविधान में लिखी हुई प्राबधान को भी नजरअंदाज कर देते हैं। रजनी अपने पिता हरनामसिंह को समझाते हुए कहती है "संविधान के अनुसार देश के प्रत्येक नागरीक को सम्मान और स्वाभिमानपूर्वक जीने का हक़ है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वेच्छानुसार व्यवसाय चुनने और जीवन की दिशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है। यदि चन्दन पढ़-लिखकर कुछ काबिल बनना चाहता है तो यह उसका संवैधानिक हक़ है, इस पर किसी को एतराज क्यों होना चाहिए। चन्दन कहीं बड़ा अफ़सर बन जाएग, पढ़-लिखकर तो इसमें क्या है? इस बात पर तो समूचे गाँव को गर्व होना चाहिए।...जब तक दूसरे लोग भी सुक्खा की तरह अपने बच्चों को काबिल बनाने की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक न देश का उत्थान होगा और न

---

[172] वही, पृ- 35-36

[173] वही, पृ- 36-37

[174] वही, पृ- 38

समाज का।"[175] अपनी बेटी से यह बात सुनकर असली बात की गांठ खुलते हुए हरनामसिंह कहते हैं "यहीं तो मैं समझाना चाहता हूँ बेटी! अकेले चन्दन की पढ़ाई-लिखाई से हमें कोई एतराज नहीं है। वह पढ़-लिखकर कहीं नौकरी कर ले इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन चन्दन की देखादेखि यदि सब चमार-चूहड़े पढ़-लिख जाएँ और सब-के-सब बाहर जाकर नौकरी करने लगेंगे, तो कल को हमारे खेतों में कौन काम करेगा।"[176] इन सारी बातों से यही स्पष्ट होता है कि आज भी भारतीय समाज में मनुवादी मानसिकता के लोग भरे पड़े हैं जो दलितों को शिक्षा से वंचित रख कर उसे हथियाना चाहते हैं। इससे वर्चस्ववादी व्यवस्था कायम रखने की कुटिल नीतियाँ यहाँ दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में दयानंद बटोही की 'सुरंग' कहानी को देख सकते हैं।

मजदूर अर्थव्यवस्था के पहियों की तरह है। पूरी दुनिया में चाहे वह कोई भी देश हो, मजदूरों के बिना वहां की अर्थव्यवस्था नहीं चल सकती या कहे की उनकी बिना वहां के अर्थव्यवस्था चरमराने लगेगी। इसके बावजूद धर्म के ठेकेदार, देश के पूंजीपति वर्ग और सत्ता में आसीन लोग उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार कर रही है यह जग जाहिर है। घोर दरिद्रता के कारण दलित लाचार तथा मजबूर होकर उन्हें सवर्ण के अनेक दकियानूसी कायदे-कानून को स्वीकार करना पड़ता है। कमरतोड़ मेहनत करने के बावजूद दो बक्त के रोटी के लिए तरसना पड़ता है ऊपर से करोखानों में मालिकों से गलियां भी सुनना पड़ता है। जैसा कि कर्दम लिखते हैं "रही काम की बात सो दिन-रात कमरतोड़ मेहनत करके भी आदमी को दो जून की रोटी मयस्सर नहीं हो पाती ठीक से। बीस-तीस रुपये का काम कराकर मालिक छः सात रुपये देता है-दिहाड़ी के। भूखा पेट क्या करे, जो मिल जाए उसी से संतोष करना पड़ता है। ज्यादा दिहाड़ी की बात करें भी कैसे, क्या पता कल उससे भी हाथ धोना पड़ जाए। ऊपर से मालिक की गालियाँ और 'साले चले आते हैं नखरा दिखाने, लीडर बनते हैं हरामजादे। काम-धाम करंगे नहीं और चाहेंगे कि फैक्ट्री इनके नाम हो जाए।' केवल मेहनत-मजदूरी के बल पर जिन्दा रहने वाले इन लोगों की विवशता है कि सब कुछ सुनकर भी और बर्दाश्त करके भी उन्हें वहीँ पर काम करना पड़ता है।"[177] इस वक्तव्य द्वारा लेखक ने दलितों की दुर्दाशामय जीवन स्थिति को अभिव्यक्ति की है। उनके जीवन स्थिति के बारे में आगे कर्दम लिखते हैं कि "कोई एक विवशता हो हम गरीबों की तो बताएं भी। हम अभावों में पैदा होते हैं, जिंदगी भर अभावों में जीते हैं

[175] वही, पृ- 70-71

[176] वही, पृ- 71

[177] वही, पृ- 13

और अभावों में ही मर जाते हैं।"[178] इस उपन्यास में इन्हीं दलित मजदूरों के साथ हो रहे आर्थिक शोषण और आर्थिक विपन्नता, दुर्दशा, पीड़ा, संत्रास, वेदना का मार्मिक चित्रण को जयप्रकाश कर्दम ने बखूबी दिखाया है।

लग भग सभी दलित रचनाकार इस तथ्य पर एकमत है कि दलितों को इस स्थिति तक पहुँचाने का श्रेय तथाकथित धार्मिक कहे जाने वाली ग्रंथों का है और भारतीय समाज की वर्ण-जाति आधारित सामाजिक संरचना जो हिन्दू धर्म का पाखंड है। हिन्दू धर्म छुपी आत्मा-परमात्मा, अवतारवाद, भाग्यवाद, पुनर्जन्मवाद तथा वर्णवाद व्यवस्था के तहत जात-पात, छुआछूत जातीय श्रेष्ठता आदि ने दलितों को हर तरह से कमजोर किया है। भारतीय समाज-व्यवस्था के बारे में डॉ. हरीनारायण ठाकुर अपने दलित साहित्य का समाजशास्त्र किताब में डॉ. अंबेडकर के हवाले से कहते हैं कि "जाति का जन्म धर्म से हुया है। धर्म ने उसको प्रतिष्ठित किया और उसे पवित्रता प्रदान की। इस कारण कहना उचित है कि धर्म ही वह पक्की नींव है, जिस पर हिंदुओं ने अपना सामाजिक ढाँचा खड़ा किया।"[179] इसलिए हिन्दू धर्म की आत्मा-परमात्मा, भाग्यवाद, अवतारवाद, पुनर्जन्म आदि मान्यताओं का खंडन करना वह अपना कर्तव्य समझते हैं। क्योंकि पुरोहितवाद द्वारा ये सभी कार्य दलितों के शोषण का मुख्य कारण या उपकरण है, इसलिए 'छप्पर' का नायक चन्दन के जरिये यज्ञ के लिए चंदा मांगने वालों को समझाते हैं कि "इस सबका कोई औचित्य नहीं है सिवाय इसके कि इसके सहारे कुछ लोगों की आजीविका चलती है और उनको मेहनत करके कमाने की जरुरत नहीं पड़ती।"[180]

किसी जाति के स्वाभिमान को तोडना है तो उस जाति के महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है। दलित स्त्रियों का सवर्णों द्वारा दैहिक-शोषण इसी मानसिक विकृति का प्रतिफल है। ऐसे ही एक घटना दलित युवती कमला के साथ घटती है। लेकिन उन्होंने कमला के साथ हुए बलात्कार को अखबारी रिपोर्ट बनने से बचाते हुए जो रचनात्मक मोड़ दिया है वाके में वह सराहनीय है। इस घटना से उपजे आक्रोश से भरे हरिया ने अपने बेटी के साथ हुई ज्यादती का बदल भट्टा मालिक की हत्या करके चुकाता है। इस घटना की प्रतिक्रिया स्वरूप एक बेटी का बाप प्रतिशोध लेता है। यह दलित-लेखक का हिंसा के बदले प्रतिहिंसा में बदलता नया तेवर है। जहाँ स्थापित शक्ति संरचना को, सामूहिकता और प्रतिरोध से चुनौती मिल रही है।

---

[178] वही, पृ- 103

[179] डॉ. हरीनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ- 35

[180] वही, पृ- 20

'भेद' उपन्यास में अखिल नायक दिखाते हैं कि किस प्रकार वर्ण आधारित जाति-व्यवस्था के अनुसार भारतीय सामाजिक संरचना में दलितों की स्थित अछूत है और सवर्ण कहे जाने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ है। भारतीय समाज में तथाकथित सवर्ण की सामाजिक स्थिति जहाँ देवत्व की है वहाँ अवर्ण कहे जाने वाले दलितों का स्थिति कुत्तों से भी बदतर है। सवर्ण समाज का व्यक्ति अपने घर में कुत्तों को पाल सकते हैं पर किसी दलित समाज के व्यक्ति को नहीं छू सकते हैं। दलितों द्वारा बनाया गया तथा उपजाया गया कोई भी चीजें उनको चाहिए उनमें कोई गंध नहीं है परन्तु उनकी छाया उनके लिए घातक है, जिसके लिए वह इन लोगों से अपना दूरी बनाये रखना चाहते हैं। मनुष्य-मनुष्य में भेद करना, मनुष्य को मनुष्य के रूप में न देखना, उससे जानवर जैसा बर्ताव करना, यह आज दलितों की वास्तविक स्थिति है। कैसे एक दलित समाज के लोगों को छूने से एक सवर्ण समाज का व्यक्ति को अछूत मानकर उसे अपने जाति में फिर से लाने के बहाने बनाकर दलितों का किस प्रकार सामाजिक और आर्थिक शोषण किया जाता है। वह इस उपन्यास के जमींदार के कथन से अनुमान लगाया जा सकता है। जब वह पंचायत की राय सुनाते हुए कहते हैं "पर मास्टर, युवराज अब फिर से हमारी जाति में आएगा, उसके लिए जो खर्च होगा उसे कौन देगा?' कितना खर्च है? 'जाति भाई के खाने के लिए पंद्रह किलो चावल, दो किलो दाल, सब्जी, तेल-मसाला और दो सौ रुपये।"[181]

इस तरह के सामाजिक नियम सवर्ण समाज द्वारा बनाया गया है। जिससे हर रोज कोई न कोई दलित उपेक्षित हो रहा है तथा उनके इस दकियानूसी नियम का शिकार हो रहा है। भारत को स्वतन्त्र हुए सात दशक से अधिक हो गए हैं फिर भी भारत के कई प्रान्तों में आज भी यह व्यवस्था कायम है या देखने को मिलती है। न चाहते हुए भी सवर्ण द्वारा बनाई हुई इन कठोर सामाजिक नियमों का गरीब, दलितों को पालन करना पड़ रहा है। ऐसा नहीं करने से उन्हें समाज से बहिष्कार होने क डर लगा रहता है।

सामाजिक समस्याओं से जूझने के साथ-साथ व्यवस्था के नाम पर दलितों को आर्थिक समस्याओं से भी गुजरना पड़ता है। आर्थिक विवशताओं और विसंगतिपूर्ण स्थितियों ने दलितों के जीवन को नर्क बनाया है। इन सभी समस्याओं के मूल में हमारे भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था मुख्य रूप से उत्तरदायी है। वर्णव्यवस्था के नियमानुसार दलित या अस्पृश्य कही जाने वाली जातियां वह है जो समाज में पांचवीं वर्ण में आते हैं। जिसके लिए मनु 'महाराज' ने

[181] 'भेद', पृ- 29

कहा है उनमें योग्यता होने पर भी आय के अन्य स्रोत जैसे शिक्षा और व्यपार से उन्हें दूर रखा गया है। क्योंकि वह सेवक जाति है और दूसरों का सेवा करना उनका धर्म है।

आज इक्कीसवीं सदी में पहुँच कर भी समाज में बहुत बड़ा आर्थिक-असंतुलन दिखाई पड़ता है। सोचने वाली बात यह है कि जो देश का निर्माता है उसे ही आज अपने जीने के लिए दर-ब-दर भटकना पड़ रहा है। अर्थात जिन दलित या श्रमिक-वर्ग अपनी श्रम से देश को संवारता है, सहेजता है और समृद्धशील बनाता है, उसी को देश और समाज क्यों नहीं संवारता है? मजदूर अर्थ-व्यवस्था की पहियों की तरह है। पूरी दुनिया में चाहे वह कोई भी देश हो मजदूरों के बिना वहां की अर्थव्यवस्था नहीं चल सकती। इसके बावजूद देश के पूंजीपति वर्ग और सत्ता उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करता है यह सर्वविदित है। इन्ही मजदूरों के साथ हो रहे शारीरिक शोषण को अखिल नायक ने अपने उपन्यास में बखूबी दिखाया है। जिसमें मिल मालिक द्वारा श्रमिकों का शारीरिक शोषण होता है। उनको उनकी श्रम का उचित मूल्य नहीं दिया जाता है। जब वह अपनी हक़ के लिए आन्दोलन करने बैठते हैं तो मिल मालिक एक दूसरे राजनीतिज्ञ से मिलकर उनका शोषण के रास्ता निकलते हैं। वह राजनीतिज्ञ उससे कहता है "और ज्यादा दिन नहीं है, सेठ। हमारे पार्टी को शासन में आने दो। देखना हम उस महार के संविधान को कचरे के डिब्बे में फेंक देंगे। ऐसा कानून बनायेंगे, आपकी मिल में कभी ताला नहीं लगेगा।"[182] आगे वह अपनी बात को चालू रखते हुए सेठ को धैर्य रखने को कहते हुए कहते हैं "धैर्य रखो सेठ, सारी समस्या का समाधान धैर्य से ही संभव है। तुम ऐसे एरे-गेरे की तरह धैर्य खो दोगे तो कैसे चलेगा? मुझे एक दिन का समय दीजिये। सोच-विचार कर चाल चलानी पड़ेगी। मुझे सोचने दीजिए।"[183] इस प्रकार आज के पूंजीपति वर्ग और राजनेता मिलकर श्रमिकों का शोषण कर रहे हैं।

उपन्यास में एक और प्रसंग आता है जहाँ पर एक सरकारी अधिकारी ही सरकार द्वारा गरीब दलित लोगों को भत्ता स्वरूप महीना में जो पैसा दिया जाता है, उस पैसा के हर महीने दो-दो सौ रुपये काट कर उन लोगों का आर्थिक शोषण करता है, जो पैसा की उस अधिकारी के जेब में जाता है और जब गाँव का ललटू नामक एक युवक क्यों गरीब-दुखियों का पैसा काटे हो

[182] वही, पृ- 53
[183] वही, पृ- 53

पूछने पर कटुता से कहता है "ये बात पूछने वाला तू कौन होता है? तू क्या मेरे हाकिम है? कलक्टर है?"[184]

सरकारी अफसरों द्वारा शोषण आज समाज में बढ़ता जा रहा है, जिसका एक झलक इस उपन्यास में अखिल नायक द्वारा दिखाया गया है। इसका शिकार हमेशा से गरीब दलित लोग ही होते हैं।

धार्मिक-स्तर पर गरीब दलित के साथ शोषण तथा अन्याय होना कोई नई या आम बात नहीं है। दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है, जहाँ पर किसी न किसी रूप में धर्म की सत्ता कायम न रही हो! इसाई, बौद्ध और इस्लाम भारत के बाहर भी प्रभावी धर्म रहे है, परन्तु हिन्दू धर्म में जिस प्रकार अमानवीयता बरती गयी है शायद दुनिया में कोई ऐसा धर्म होगा जो मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव कर रहा होगा या जहाँ ऐसा निंदनीय प्रथाएं देखने को मिलती हो। हिन्दू धर्म के औचित्य पर सोचते हुए डॉ. अंबेडकर का प्रश्न यह था कि "असमानता हिन्दू धर्म की आत्मा है? हिन्दू धर्म की नैतिकता केवल सामाजिक है। कम से कम यह बात निश्चिंत है कि यह नैतिकता मानवता विरोधी है। जो बात नैतिकता तथा मानवता विरोधी होती है वह बात आसानी से अमानवीय तथा कुख्यात बन जाती है। आज हिन्दू धर्म ऐसा ही कुछ बन गया है। जो लोग इस बात पर संदेह करते हैं अथवा इस धारणा को नकारते हैं उन लोगों को हिन्दू समाज की सामाजिक संरचना की समीक्षा करनी चाहिए।"[185] स्वामी विवेकानंद ने हिन्दू धर्म की रुढियों आडम्बरों और बाह्याचारों से ऊपर उठकर धर्म की विलक्षण व्याख्या प्रस्तुत करते हैं कि "धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवत्व का विकास है।' धर्म न तो पुस्तकों में है, न धार्मिक सिद्धांतों में। वह केवल अनुभूति में निवास करता है।"[186]

शंकराचार्य से गोरखनाथ तक जितने भी धार्मिक नेता हुए हैं सबका कहना यही है कि भगवान घट-घट वासी हैं यानि हर जीव में वह निवास करने वाले हैं। अर्थात सबको बनाने वाला विधाता एक है। तो फिर हिन्दू, धर्म-व्यवस्था को अपनाते हुए सवर्ण समाज धर्म के नाम पर क्यों दलितों के ऊपर अमानवीय अत्याचार करते हैं? जब सबको बनाने वाला विधाता एक हैं तो क्यों फिर दलितों का मंदिर प्रवेश वर्जित या निषेध, क्यों वे अपने भगवान के दर्शन से दूर किया जाता है और क्यों उनको पूजा करने नहीं दिया जाता है। सवर्ण समाज किस प्रकार

---

[184] वही, पृ- 36

[185] बाबा साहब डॉ. अंबेडकर- सम्पूर्ण वांगमय, खंड-6, पृ- 114

[186] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ- 547

धार्मिक कहे जाने वाली ग्रन्थ की आड़ में दलितों का शोषण करते हैं। उसके बारे में अखिल नायक लिखते हैं "शास्त्र में लिखा है डोम जाति के लोगों को मंदिर में जाना मना है, पता है?"[187]

विचित्र बात यह है कि इस तरह के नियम समाज में अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए खुद सवर्ण ने बनाए हैं और नाम शास्त्रों का देते हैं। चूँकि दलितों को तो शास्त्र पढ़ना मना ही है तो उनको कैसे पता चलेगा की शास्त्र में क्या लिखा गया है? इस प्रकार शास्त्रों का बहाना करके हमेशा सवर्ण समाज के लोगो ने दलितों के ऊपर जुल्म करते रहते हैं।

दलितों के साथ सिर्फ सामाजिक, आर्थिक समस्या ही नहीं बल्कि राजनीतिक समस्या भी रही है। शुरू में ही शिक्षा से वंचित होने के कारण समाज में क्या हो रहा है क्या नहीं उससे अनभिज्ञ रहने के कारण राजनीतिक रूप से भी पीछे रहे, जब अंबेडकर के द्वारा संविधान लिखा गया और उन्होंने पृथक निर्वाचन की मांग की तब दलितों में राजनीतिक-चेतना का विकास हुआ। राजनीति एक ऐसा हथियार है जो लोगों के साथ प्रतक्ष्य रूप में न प्रयोग करके परोक्ष रूप से किया जाता रहा है। सत्ता में आने के लिए आदमी क्या-क्या नहीं करता है? लेकिन राजनीतिक सत्ता में आने के बाद निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले आज न के बराबर हैं। सत्ताधारी लोग जैसे ही सत्ता में आसीन हो जाते हैं तब वह अपना दाव-पेंच से निःस्वार्थ, सरल, अशिक्षित लोग जिनको राजनीति का 'र' अक्षर भी पता नहीं होती है तथा राजनीति है क्या चीज, राजनीति किस चिड़िया का नाम है नहीं पता होती। उन लोगों को लुटने तथा शोषण करने में सत्ताधारी लोगों को आसान हो जाता है। क्योंकि ये गरीब दलित लोग इनके खिलाफ आवाज नहीं उठाते हैं। इसलिए बनबिहारी त्रिपाठी और सेमी सेठ मिलकर अपनी राजनीतिक चाल चलाने की कोशिश करते हैं।

सवर्ण लोग हमेशा सत्ता में आना चाहते हैं वह राजनीति में किसी दूसरे को आने देना नहीं चाहते हैं। जिसका जीता-जागता स्वरूप उपन्यास में अखिल नायक ने दिखाया है। जब दलित लड़कों ने मिलकर अपना एक संगठन बना कर सरपंच के लिए अपना एक स्वाधीन प्रतिनिधि के रूप में रघु मेहेर को खड़ा किया तब सवर्ण समाज के सत्ताधारी लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। जब वह विजयी होकर सरपंच की कुर्सी पर बैठने के लिए फुल-मालाएं पहन कर पंचायत के कार्यालय में आया तो उसे रास्ते से हटाने के लिए साजिशें शुरू हो गयी और उसको पिटा गया। जैसा कि नायक लिखते हैं "पर जिस दिन सरपंच की कुर्सी पर बैठने के लिए रघु मेहेर माला पहनकर पंचायत आया था, बेहेड़ा के शास्त्री चौक में उसकी पिटाई हुई थी। इस

---

[187] 'भेद', पृ- 59

काम के लिए गाँव के कुछ शराबियों को दो हजार रुपये देना पड़ा था सेमी सेठ को। बात कोट-कचहरी तक गई। अब भी केस वैसे ही चल रहा है। रघु मेहेर अपमानित हुआ इस बात को सेमी सेठ ने अपने मन में समझ लिया था, मगर इससे उनका क्या नुकसान की भरपाई होने वाला था जो होता!”[188]

दलितों के साथ शोषण तो बहुत पुरानी बात है जो आज भी देखने को मिल जाता है। लेकिन यह कहाँ तक सही है कि स्कूल जैसे शिक्षा संस्थानों में छोटे-छोटे बच्चों के मन में छुआछूत जैसी अमानवीय भावनाएं पैदा की जाती है। जिसका उसे बोध भी नहीं है कि यह छुआछूत क्या होता है? कहा जाता है कि स्कूल ज्ञान का भंडार तथा मंदिर है और शिक्षक उस मंदिर का पुजारी है। पर जब ज्ञान के मंदिर में ही इस तरह के शोषण शुरू हो जाए तब किसको क्या कहा जाय? लेखक ने शिक्षा संस्थानों में होने वाले शोषण को उपन्यास के नायक ललटू के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। जैसा कि शिक्षक तिरस्कृत करते हुए बोलता है “पंद्रह छोड़कर पचास देने से भी तुझे पूजा में यजमान के रूप में बैठा नहीं सकते। तू बैठ जा।” आगे वह समझाते हुए कहता है “समझ में नहीं आ रहा है मैं ऐसा क्यों बोला? अरे, इसमें समझाने की क्या बात है? डोम लोगों के हाथ से हम आदमी होकर पानी नहीं पीते हैं और देवी सरस्वती प्रसाद कैसे ग्रहण करेंगी?”[189] जब इस तरह की बातें खुद शिक्षक करता है तो बच्चे और अन्य लोगों से क्या अपेक्षा की जाएगी?

जंगल के रहने से परिवेश के साथ-साथ प्राकृतिक संतुलन और मौसम सही रहता है। जंगल के साथ आदिवासियों से लेकर गरीब, दलित तक सबका गहरा रिश्ता रहा है। वे दोनों प्रकृति की पूजा करते हैं साथ ही जंगल से मिलने वाली कुछ चीजें जैसे कि झुना, लाख आदि इक्कठा करके वे अपनी आजीविका निर्वाह करते हैं। लेकिन कुछ स्वार्थी और लोभी व्यक्ति अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिए जंगल से बहु मूल्यवान पेड़ काटकर उसका व्यापार करते हैं। उनके इस कार्य से निर्दोष गरीब, दलित व्यक्ति बलि चढ़ जाते हैं, जिससे उनके पूरे परिवार प्रभावित हुए बिना नहीं रहा सकता है। इन लोगों की इस मुनाफाखोरी से सिर्फ जंगल ही नष्ट नहीं होता बल्कि जंगल के प्राणी भी प्रभावित होते हैं और साथ ही प्राकृतिक सौंदर्य भी नष्ट होता है और किसी का परिवार भी उजाड़ जाता है।

---

[188] वही, पृ- 49

[189] वही, पृ- 77

सूर्य जिस प्रकार सकल शक्ति का आधार माना जाता है, उसी प्रकार स्त्री भी संसार का आधार स्तम्भ है। जिसके गर्भ से इस पुरे संसार की सृष्टि होती है। वह माँ, बहन, पत्नी, सहेली न जाने कितने रूप में इस संसार को संभाले हुए हैं। वही स्त्री आज समाज के द्वारा प्रताड़ित है। एक तो वह स्त्री होने के कारण शोषित है ऊपर से वह दलित है तो उसकी स्थिति और भी बदतर हो जाती है इस पुरुष प्रधान समाज में। पुरुषत्व के अहंकार में आकर एक पुरुष स्त्रियों को संकीर्ण दृष्टि से देखता है उसकी झलक इस उपन्यास में अखिल नायक ने एक सवर्ण समाज के व्यक्ति द्वारा स्त्रियों के प्रति संकीर्ण मानसिक दृष्टि को दिखाया है। सवर्ण समाज के पुरुष स्त्री को इतनी गन्दी-गन्दी गाली देते हुए सामने आते हैं जो सुनना भी हमारे लिए मुश्किल हो जाता है। ऐसा ही एक पात्र है उपन्यास में जो उन लोगों का प्रतीक है जो स्त्रियों के प्रति संकीर्ण मानसिकता रखता है और उन्हें गन्दी गलियां देता है, जैसा कि लेखक लिखते हैं "अगर कभी कोई डोम औरत ने मंदिर में प्रवेश किया तो, उसके 'पुदी में शाबल'[190]ड़ाल दूंगा...नमक मिरची ड़ाल दूंगा...।[191]"

इस तरह की गन्दी-गन्दी गालियां स्त्रियों के लिए प्रयोग की गई है। जिससे उन संकीर्ण मानसिकता वाले लोगों के बारे में पता चलता है जो स्त्रियों को केवल भोग के वस्तु के अलावा और कुछ नहीं समझते हैं। वह स्त्रियों को हमेशा अपनी पैर की जूती समझते हैं, वे चाहते हैं स्त्री केवल उनके इशारों पर नाचे। जबकि स्त्री पुरुषों की अर्द्धांगिनी न होकर उनकी सहगामी होती है। अतः इस तरह की मानसिकता का दूर होना अत्यावश्यक है, जिसके लिए स्त्री को खुद आगे आकर अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व के लिए कदम आगे बढ़ाने होंगे।

यहाँ यह भी कहना सार्थक होगा कि जब सावित्री फुले और डॉ. अंबेडकर नारी जगत के लिए न्याय तथा समानता की वकालत करते हैं तब वह नारियों से भी अपेक्षा करते हैं कि वे स्वयं अपनी भाग्यवादी मानसिकता का परित्याग करें। निःसंदेह भारतीय नारियों का भाग्यवादी रुख और अंधविश्वासों के प्रति उनका विद्रोह अपने ऊपर लादी गई अमानवीय व्यवस्था के विरोध में है। तसलीमा नसरीन भी औरत के हक़ में कहती है 'यदि धर्म की इमारतें एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से प्रेम ख़तम करती है तो ध्वस्त हो जाएं ये मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर और पैगौड़ा का सारा अस्तित्व, ईंट-पत्थर से बड़ा मनुष्य है। ईंट-पत्थर से बड़ा प्रेम है।

इसमें कोई शक की बात नहीं है कि आधुनिक शिक्षा और आरक्षण निति लागू होने की बदौलत दलितों के हाल में थोडा सुधर आयी है। आधुनिक शिक्षा ने एक बदलाव तो जरुर किया

---

[190] एक गन्दी गाली

[191] वही, पृ- 59

है और कई सामाजिक परिवर्तनों ने दलितों को उच्च जाति के पदों पर जगह मिलने को संभव बना दिया है, लेकिन पारंपरिक सत्ता संरचनाओं में बैठे लोग परेशान करते हैं। जमीनी हक़ीकत पर नजर ड़ालें तो दलितों को उन जगहों पर नौकरी मिलना अभी भी असंभव लगता है, जहाँ पर ऊँची जातियों ने कई सालों से उन जगहों पर कब्ज़ा किया हुआ है। पिछले कुछ वर्षों में ऊँची जातियों ने जिस तरह से अपने जातिगत नेटवर्क को बनाए रखा है उसका आकलन करना अभी भी काफी मुश्किल लगता है।

जब भी कोई दलित बेहतर स्थिति प्राप्त कर लेता या अपनी अस्मिता को लेकर जागरूक होके आवाज बुलंद करता है तो कैसे उच्च कही जाने वाली जातियों को खतरा महसूस होता है। इसका कई उदहारण प्रस्तुत करते हुए अखिल जी ने इस लक्षण को अपने 'भेद' उपन्यास में 'जातिवादी मानसिकता' के अंतर्गत ढूंढा है। ऊँची जातियों को लगता है कि भारत में हर सार्वजनिक संस्थान केवल उनके लिए आरक्षित होना चाहिए। आरक्षण से गरीब, दलित आदिवासियों को अपने स्थिति में सुधार हो रहा जिसके लिए सवर्ण इस आरक्षण के विरुद्ध बात करते पाए जाते हैं। जैसा कि बनबिहारी त्रिपाठी और व्यवसायी सोमेन अग्रवाल की बातों से स्पष्ट देखा जा सकता है। जब वह आरक्षण की बात करते हुए सोमेन अग्रवाल से कहता है "देखिए डोम-घासी कैसे सर्कार के दामाद बन गए हैं। कैसे हमारे सिर पर नाच रहे हैं। उन लोगों की पढाई के लिए स्टाईफंड और उनकी नौकरी के लिए कोटा है। पर और ज्यादा दिन नहीं सेठ। हमारी पार्टी को शासन में आने दो। देखना, हम उस महार के संविधान को कचरे के डिब्बे में फेंक देंगे।"[192]

दलित साहित्य में वेदना सामूहिक स्वर में व्यक्त होने वाली एक सामाजिक वास्तविकता है। वैसे ही नकार और विद्रोह भी सामाजिक और सामूहिक स्वरूप का ही एक अंग है। वेदना और नकार के बाद की अवस्था विद्रोह है। 'मैं मनुष्य हूँ, मुझे मनुष्य के सभी हक़ मिलने चाहिए।' यानि की एक मनुष्य होने के नाते बाकी मनुष्य को जिन-जिन सुविधाएँ मिलाती है वही सारे सुविधाएँ समाज के हर मनुष्य को मिलनी चाहिए।

3.2. समाज-व्यवस्था में बदलाव के आकांक्षी

भारतीय समाज व्यवस्था की नींव तथाकथित धार्मिक-ग्रंथों के नियमों पर आधारित है। विश्व में ऐसा कोई भी देश नहीं है जो भारतीय जैसी सामाजिक संरचनाएं बसी हो? भारतीय

---

[192] वही, पृ- 53

समाज-व्यवस्था के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए दलित चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं "भारतीय समाज-व्यवस्था सामंती ढाँचे पर निर्मित हुई है। जिसे ऋषि-मुनियों, राजा-पुरोहितों ने तैयार किया और दार्शनिकों, साहित्यकारों ने खाद-पानी देकर सुदृढ़ किया है।"[193] आगे वह यह भी कहते हैं कि "आज कहने को तो भारत में लोकतंत्र है। लोक यानी जनता द्वारा संचालित। लेकिन समाज-व्यवस्था के सामने बौना। जहां जातीय अहम ही सर्वश्रेष्ठ है, शक्तिशाली है। जिसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित ही नहीं किया अपनी गिरफ्त मे कसा हुया है। इसकी गिरफ्त इतनी ताकतवर है कि भंगी-समाज इससे छूट नहीं पा रहा है।"[194] सामाजिक, आर्थिक, नैतिक और शैक्षणिक रूप से सवर्ण ने दलितों पर शुरू से ही उनको कमजोर बना करके उनका शोषण किया है। दलितों के साथ शोषण होना कोई नयी बात नहीं है। लेकिन यह शोषण किस हद तक और किन सीमाओं तक जा सकता है, उसका वर्णन दोनों उपन्यास में दिखाई देता है, जैसा कि उसके शीर्षक के नामकरण से पता चलता है।

दलित उपन्यासों का सृजन सामाजिक जीवन में फैले घृणा, अपमान, अन्याय, अत्याचार, छुआछूत आदि विषमताओं पर व्यंग्य करते हुए समाज को सर्वसामान्य भावभूमि के पास खड़ा करना चाहता है। दलित उपन्यासकारों ने सामाजिक जीवन से जुड़ी तमाम् समस्याओं की ओर ध्यान केन्द्रित करके सामाजिक न्याय का समर्थन किया है। अज्ञान, अशिक्षा के कारण वर्चस्ववादी समाज व्यवस्था ने दलितों को सदियों से गुलाम रखा हुआ है, लेकिन आज डॉ. भीमराव आंबेडकर के द्वारा संवैधानिक अधिकार प्राप्त करके दलित अपने अधिकार के प्रति सचेत होकर स्वतंत्रता, समता, न्याय की बात करते हुए सामाजिक बदलाव की बात करते हैं। इसका वास्तविक चित्रण दलित उपन्यास में दिखाई देता है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम कृत 'छप्पर' उपन्यास में भी वर्चस्ववादी सामाजिक व्यवस्था में फैले अन्याय-अनीति, छुआछूत, उंच-नीच भेदभाव के खिलाफ विद्रोह करते हुए सामाजिक बदलाव की वकालत करते दिखाई देते हैं। "कौन कहता है व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता। आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई है सारी व्यवस्थाएँ, और सारी व्यवस्थाएँ आदमी के लिए ही हैं। तब, यदि किसी व्यवस्था में दोष हो

---

[193] ओमप्रकाश वाल्मीकि, सफाई देवता, पृ- 106

[194] वही, पृ- 106

और वह उत्थान की बजाय पतन का कारण बनती हो, तो उसे अवश्य बदला जा सकता है, और बदला जाना चाहिए।"[195]

प्रगतिशील विचार रखने वाली रजनी एक सवर्ण युवती होते हुए भी अपने पिता के सामाजिक विरोध कार्य की निंदा करती है कि "कसूर है आपका पिताजी! बेकसूर नहीं हैं आपभी। यदि परंपराएँ गलत हो, जन-विरोधी हो, यदि व्यवस्था दोषपूर्ण हो, तो उसका विरोध किया जाना चाहिए। और यदि करने की सामर्थ्य या साहस नहीं है तो भी कम से कम इतना तो किया ही जा सकता है कि हम स्वयं उस व्यवस्था और परंपराओं को न मानें। लेकिन ऐसा भी कहाँ किया आपने।"[196] रजनी का व्यक्तित्व मानवता का परिचय देता है। दलितों के दुखी कष्टमय जीवन के प्रति उसके मन में हमदर्दी है। दलित जनों के उत्थान के लिए वह चन्दन द्वारा चलाये गये सामाजिक आन्दोलन में भी हिस्सा लेती है। सामाजिक स्तर पर समता रखने के लिए वह वर्चस्ववादी समाज-व्यवस्था तथा वर्ण-व्यवस्था और जातीय श्रेष्ठता के प्रति विद्रोह खड़ा कर देती है।

चन्दन जब पढ़ने के लिए शहर आता तो उसके मन में एक भावना थी कि शहर की जीवन-शैली गाँव के गंदेपन से भिन्न और साफ-सुथरी होगी। लेकिन थोड़े ही दिन में शहर को लेकर उसकी कल्पना टूट जाती है। वह शहर में भी उंच-नीच, छुआछूत तथा आर्थिक शोषण को महसूस करता है। इसलिए वह समाज में फैले अंधविश्वास और अज्ञानता के खिलाफ लोगों को सचेत करता है। संत नगर के लोग बारिश न होने के वजह से इन्द्र की प्रसन्नता के लिए यज्ञ का आयजन करके चंदा इकट्ठा करने लगते हैं तब वह उनको समझाते हुए कहता है "यह मान्यता गलत है कि यज्ञ करने से भगवान इन्द्र प्रसन्न होंगे और तब वर्षा होगी। वर्षा होगी मानसून के आने से। अभी मानसून नहीं आया है इसलिए वर्षा नहीं हो रही है। यज्ञ-वज्ञ सब बेकार की चीजें हैं।"[197] आगे वह लोगों में फैले अंधविश्वास को दूर करने के लिए वैज्ञानिक तरीका अपनाते हुए कहता है "सच्चाई यह है कि दुनिया में आत्मा, परमात्मा, ईश्व, ब्रह्म, भगवान या इस तरह की किसी सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य सबसे बड़ी सत्ता है, दुनिया में मनुष्य से बड़ी कोई चीज नहीं है। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म और भगवान, इसमें कोई भी वास्तविक नहीं है। ये

---

[195] 'छप्पर', पृ- 88
[196] वही, पृ- 97
[197] वही, पृ- 19

सब मिथक हैं, काल्पनिक हैं तथा भोले-भले लोगों को बेवकूफ बनाकर अपने स्वार्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से चालक लोगों द्वारा ईजाद किए गए हैं।"[198] उपन्यासकार, चन्दन के इस कथन के जरिये भोले-भाले लोगों में फैले अंधविश्वास को दूर करके उनमें सामाजिक चेतना जागृत करके समाज में बदलाव की राह दिखाने की कोशिश करते नजर आते हैं। इसके लिए वह चन्दन से कहलवाते हैं "मैं कहता हूँ कि तुम लोग सच्चाई को जानो और समझो तथा ऐसे काम करो जिनसे तुम्हारा भला हो सके। इन यज्ञ अनुष्ठानों पर किया गया खर्च कहाँ लगेगा? उसका क्या लाभ होगा? बेहतर है कि इतना पैसा जीवन सुधार के दूसरे कार्यों पर खर्च किया जाए। तुम्हारे बच्चे दिन-भर रेत-मिट्टी में खेलते-फिरते हैं। उनका भविष्य बनाने की ओर ध्यान दिया जाए, उनके लिए स्कूल खोले जाएँ।...महिलाओं को सिलाई-बुनाई का प्रशिक्षण दिलाने की व्यवस्था की जाए। इनके अलावा भी बहुत से काम हो सकते हैं। चंदा इकट्ठा करके ऐसे कार्य किये जाने चाहिए। इन कार्यों में मैं भी तुम लोगों का साथ दूंगा।"[199] इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट होता है कि उपन्यासकार ने चन्दन के माध्यम से डॉ. अंबेडकर के शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो! कथन को चरितार्थ करते हुए लोगों में बदलाव की भावना को पैदा किया है।

शहर में जाकर चन्दन दलित युवकों का एक सर्किल बनाकर अपनी प्रगतिशील चेतना या विचार से समाज में व्याप्त शोषण, उपेक्षा और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष की भावना की जागृत करता है। अपने दोस्तों से कहता है "तुम लोग क्या समझते हो कि तुम्हारी वकालत और व्यापार चल जाएँगे? यह तुम्हारी भूल है। जब तक समाज में ऊँच-नीच और छुआछूत का जहर व्याप्त है, जब तक समाज में तुम्हारी निम्न परिस्थिति है, जब तक तुम्हारी सामाजिक रूप से कोई हैसियत नहीं बनती, तब तक तुम्हारे व्यवसाय चलाने की कोई गुंजाईश नहीं है।"[200] इसलिए वह अपने दोस्तों की बात सुनकर आगे कहता है "हमें प्रत्येक क्षेत्र में आना चाहिए। केवल सामाजिक रूप से ही हमारी परिस्थिति निम्न नहीं है बल्कि आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक,प्रत्येक क्षेत्र में हम

[198] वही,पृ- 19-20

[199] वही, पृ- 22

[200] वही,पृ- 41

पिछड़े हुए हैं। हमें प्रत्येक क्षेत्र में ऊपर आने की जरुरत है लेकिन सबसे पहले जरुरत है-सामाजिक सम्मान की।”[201]

सवर्ण के षड़यंत्र के कारण सदियों से दासता और गुलामी की जंजीरों में जकड़े समाज में सुधार के लिए वह अपने मित्रों से कहता है "आर्थिक, प्रशासनिक और कानूनी, उनको हर तरह की मदद चाहिए। इसलिए हमारा कर्तव्य बनता है कि हम चाहे जिस क्षेत्र में जाएँ लेकिन अपने लोगों का ध्यान रखें और उनकी मदद करें।"[202] उसके लिए वह अपनी शिक्षा की सारी उर्जा दबे कुचले समाज के कल्याण तथा पीडित, शोषित और उपेक्षित लोगों के उपयोग के लिए करना चाहता है। जिसके लिए वह कहता है “हमें समाज से टक्कर लेनी हैं, सात्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करना है। एक-दो आदमी के बस का नहीं है यह काम अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इस सबके लिए फौज तैयार करूंगा में।”[203] शिक्षा वह अस्त्र है जिसे समाज को बदलने में लगाया जा सकता है। इसलिए वह शिक्षा के महत्व को समझाते हुए कहता है 'समाज, धर्म द्वारा प्रेरित और संचालित है, हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है। 'धर्म-ग्रंथ ही हमारे शोषण और अत्याचार की जड़ें हैं। इन जड़ों को उखाड़ फेंकने की जरूरत है। उसके लिए जरूरी है लोग अधिक से अधिक पढ़ें, ताकि इन धर्म-ग्रंथों में निहित अन्याय और असमानता के दर्शन को समझ सके तथा अन्याय, शोषण और असमानता के खिलाफ संघर्ष करने के लिए खुद को तैयार कर सके। चन्दन के इस कार्य से प्रभावित होकर रजनी सवर्ण लड़फी होते हुए भी अपनी प्रगतिशील चेतना तथा सच्ची मानवीयता के कारण दलितों के प्रति सहानुभूति रखते हुए संविधान का अनुपालन करती हुई कहती है “जब तक दूसरे लोग भी सुक्खा की तरह अपने बच्चों को काबिल बनाने की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक न देश का उत्थान होगा और न समाज का।”[204]

समानतावादी सामाजिक व्यवस्था के लिए असमानता का होना गलत और अनुचित है। ज्यादातर जनता एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था में उत्साह के साथ काम नहीं करेगी जिसमें कुछ

---

[201] वही, पृ- 41-42
[202] वही, पृ- 43
[203] वही, पृ- 44
[204] वही, पृ- 71

मुट्ठी भर प्रभुत्व संपन्न लोगों को ही फायदा हो। इसके अलावा विवेक कहता है कि समानता की ओर अग्रसर हो। भारत में असमानता की आदर्श अभिव्यक्ति जाति है। यह भारत की एक सर्वव्यापी संस्था है, जो हिन्दुओं समेत सिखों, जैन, मुसलमान, ईसाई और यहूदी सभी में विद्यमान। यह एक ऐसी संस्था है जो धार्मिक क्षेत्रीय स्तर पर से लोगों को विभाजित करती है। इसलिए उपन्यासकार सामाजिक समानता के लिए व्यक्ति के जन्म के आधार पर श्रेष्ठ या हीन मानने की वजह अपितु गुण-कर्म तथा योग्यता के आधार पर ही मनुष्य को श्रेष्ठ या हीन मानने की बात करता है। जिसके लिए उन्होंने समाज से अन्याय और असमानता को मिटाकर संवर्ण-अवर्ण, सछूत-अछूत, अमीर-गरीब और मालिक-मजदूर सबको एक समान धरातल पर लाने के लिए बुद्ध, फुले, अंबेडकर और मार्क्स की विचार सूत्रों को एक साथ मेल कराते दिखाई पड़ते हैं। जिसके लिए वह चन्दन से कहलवाते हैं "हम व्यवस्था के विरोधी हैं व्यक्ति के नहीं। हमारी लड़ाई व्यवस्था के खिलाफ है, किसी व्यक्ति से कोई द्वेष नहीं है हमें यदि कोई व्यक्ति इसमें बाधक होगा तो उसका विरोध अवश्य किया जाएगा, फिर वह चाहे कोई भी हो। हम न्याय और समता पक्षधर हैं और समानता प्राप्त करने के लिए हमें व्यवस्था को बदलना है, क्योंकि हमारी समाज व्यवस्था अन्याय और असमानता को जन्म देने वाली है। लेकिन व्यवस्था को बदलने का मतलब व्यवस्था को उलटना नहीं है।"[205] उपन्यासकार एक समाज चिन्तक होने के कारण वह यह जानते है कि समाज में आज तक हिंसा से कुछ हासिल नहीं हुआ है। अतः वह व्यवस्था में बदलाव तो करना चाहते हैं लेकिन संयम से जैसा कि उन्होंने पात्र चन्दन से कहलवाया है। व्यवस्था में परिवर्तन करने का मतलब व्यवस्था को पलटना नहीं है बल्कि व्यवस्था में सुधार की जरुरत है। जिसके लिए उन्होंने गाँधी के धैर्य, फुले, अंबेडकर और मार्क्स के विचारों में मिलन करके एक 'सुन्दर समाज की परिकल्पना' करते हैं।

ओड़िया साहित्य के सन्दर्भ में जाति और साहित्यिक कल्पना में 'सामाजिक-न्याय' की खोज का एक महत्त्वपूर्ण घटक अखिल नायक का 'भेद' (2010) उपन्यास है। जिसे ओड़िया दलित साहित्य का पहला उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है। एक दलित को उपन्यास लिखने में इतना समय क्यों लगा? इस सवाल का जवाब शायद यह हो सकता है कि ओड़िया भारतीय

---

[205] वही, पृ- 118

जाति आधारित समाज की सामाजिक संरचनात्मक समस्या में है, जो आदिवासियों, दलितों और महिलाओं के साथ भेदभाव करती है। जिसके लिए दलितों द्वारा एक उपन्यास लिखने में इतना समय लग गया। अखिल नायक कृत 'भेद' का मुख्य विषय 'जाति-हिंसा' है। जिसके प्रत्येक अध्याय को एक-एक पात्रों के नाम से विभाजित किया गया है और प्रत्येक अध्याय में उपन्यासकार ने जाति के प्रश्नों को बहुत चतुराई से संबोधित किया है।

अखिल नायक कृत 'भेद' उपन्यास का विश्लेषण करने से पहले इसके व्युत्पत्तिपरक अर्थ जो उपन्यास का शीर्षक भी है उसको समझना बहुत जरूरी है। 'भेद' शब्द के अनेक अर्थ हैं, जिनमें प्राथमिक अर्थ 'भेद' है। यदि इसका प्रयोग किसी अन्य शब्द जैसे 'भाव' के साथ किया जाता है तो इसका अर्थ होगा कि 'जाति, वर्ग या नस्ल के संदर्भ में लोगों के बीच मौजूद भिन्नताएं है। भारतीय संदर्भ में भेदभाव विभिन्न प्रकार के जातिगत भेदभाव को दर्शाता है उच्च कही जाने वाली जातियों द्वारा नीची कही जाने वाली जातियों, विशेषकर दलितों के लिए व्यवहार किया जाता है। यह भेदभाव आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कई स्तरों पर हो सकता है। इस प्रकार शब्द के सभी अलग-अलग अर्थ किसी न किसी तरह से जाति के विचार और इसके मूल अर्थ से जुड़े हुए हैं। नायक जी ने अपने उपन्यास की यह शक्तिशाली शीर्षक देकर भारतीय जाति समाज की पेचीदगियों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। वह खुले तौर पर जाति-व्यवस्था की निंदा करते हैं जो जातिगत हिंसा और अत्याचारों को कायम रखती है या बढ़ावा देती है। वह जातिगत के अत्याचारों के शिकार लोगों के प्रति सहानुभूति रखते हैं, जिन्हें अपनी गलती के बिना बलि का बकरा बना दिया जाता है।

उपन्यास में जाति के सवालों को संबोधित करने से पूर्व इस विचार की जाँच की जानी चाहिए कि ओड़िया नागरिक समाज में जाति कैसे काम करती है। अन्य प्रान्त की तरह ओडिशा में भी दलित सहस्राब्दियों में जातिगत दमन के शिकार रहे हैं। मुख्य रूप से ग्रामीण और निरक्षर, पिछड़े लोग वे समाज में सबसे अधिक शोषित परिधि के समूहों में से एक बन गए हैं। सदियों से वे अमानवीय परिस्थितियों में रह रहे हैं और सामाजिक, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक अधीनता और राजनीतिक शक्तिहीनता से पीड़ित हैं। भारत को स्वतंत्र हुए सात दशक से अधिक हो गए। इसके बाद भी कोई नागरीक और अन्य सुविधाएं उन्हें आसानी से उपलब्ध नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ओडिशा एक सामंती राज्य है जहाँ कोई आधुनिक और लोकतांत्रिक

संगठन पारंपरिक सत्ता संरचनाओं उलटने में सक्षम नहीं है। ओडिशा में अस्पृश्यता की समस्याओं पर एक रिपोर्ट में राजकुमार नायक ने दलितों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं "सर्वेक्षण किये गए राज्यों में से ओडिशा एक ऐसा राज्य है, जहाँ लगभग सभी सर्वेक्षण गाँव में हरिजनों के लिए सार्वजनिक स्थान उपलब्ध नहीं थे', हालांकि हिंसक घटनाएं समान उपायों में रिपोर्ट नहीं किया गया। इसका कारण सामान्य पिछड़ापन और शक्तिहीनता हो सकता है और अनुसूचित जातियों के प्रति जागरूकता का निम्न स्तर भी हो सकता है, जो अपने साथ हो रहे सामाजिक अन्याय को सहन करना जारी रखते हैं।"[206] ऐसे प्रतिकूल परिवेश में रहते हुए जहाँ असुरक्षा का राज है, वहां ओडिशा दलितों को अपनी जीविका निर्वाह के लिए हमेशा कड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

परंपरागत जाति और ओड़िया साहित्यिक शक्तियां ब्राह्मण, कारणों और खंडायतों की शक्तियां अभी भी बनी हुई है। यानी कुछ उच्च जाति के समुदाय जो दलितों का शोषण और उत्पीडन जारी रखते हैं, नतीजा यह है कि दलितों की बाहरी स्थिति दयनीय है। उदाहरण के लिए, वे आज भी कुछ खास सड़कों पर चल नहीं सकते हैं और न ही वे साईकिल या गाड़ी की सवारी कर सकते हैं चूँकि उन्हें प्रदूषण के वाहक के रूप में माना जाता है जैसा कि दलित आलोचक ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी किताब सफाई देवता में लिखते हैं कि "कहा जाता है कि सूअर गलियों, सड़कों पर गन्दगी फैलाते हैं। जबकि सूअर सड़कों, गलियों, नालियों में मनुष्य द्वारा फेंकी गई गन्दगी को खाता है और गलियों, सड़कों को गन्दगी से मुक्त करता है। पर्यावरण को संतुलित करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है। शहर को स्वच्छरखने में मदद करता है। लेकिन फिर भी लोगों की धारणाओं में यह बैठा दिया गया है कि यह गन्दगी फैलानेवाला जानवर है। यहीं या कहें इसी तरह की धारणाएं 'भंगी-समाज' के प्रति भी समाज में प्रचलित हैं कि ये गंदे होते हैं, इनके स्पर्श से पाप लगता है।"[207]

उन्हें मंदिर परिसर में प्रवेश की अनुमति नहीं है। भले वे स्कूल, कॉलेज जा सकते हैं, लेकिन उन्हें तथाकथित उच्च कहे जाने वाले जाति के बच्चों के साथ बैठने की अनुमति नहीं है।

[206] दलित लिटरेचर इन इंडिया,पृ- 144

[207] ओमप्रकाश वाल्मीकि, सफाई देवता, पृ- 67

उनके लिए पीने का पानी इकट्ठा करने के लिए अलग से कुएं नहीं है। नदी, तालाबों में उनके नहाने के लिए अलग-अलग घाट हैं। ये कुछ भेदभावपूर्ण प्रयाएं हैं जो सवर्ण कही जाने वाली जातियां आज भी दलितों पर थोपती है।

दलितों के लिए सामाजिक और आर्थिक रूप से अनेक मानकों में सुधार के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक है। लेकिन खेद की बात यह है कि ओडिशा में विशिष्ट सामाजिक संरचनात्मक समस्याओं के कारण, ओड़िया दलित कभी भी बड़े पैमाने पर शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाए हैं। आलोचक राजकुमार ने 'भेद' लेख में ओडिशा में मौजूद विशिष्ट सामाजिक संरचनाओं और मानवशास्त्रियों द्वारा किये गये अतीत की अध्ययन में भुवनेश्वर स्थित कपिलेश्वर गाँव में अस्पृश्यता के एक अध्ययन में अमरीकी मानवविज्ञानी जेम्स एम फ्रीमैन के द्वारा जाँच किये गए शैक्षणिक संस्थानों का हवाला देते हुए कहते हैं "फ्रीमन ने अपने साक्षात्कार में कपिलेश्वर गाँव के एक दलित मुली जाति के लोग से बात करने के बाद पता किया की, 'ग्रामीण कभी नहीं भूले, न ही हमे भुलाने दिया कि हम अछूत थे। उच्च जाति के बच्चे स्कूल के अन्दर बैठे और हम में से लग-भग बीस, बाहर बरामदे पर बोरी डालकर बैठे और सुनने लगे। दो शिक्षकों, एक बाहरी ब्राह्मण और मंदिर के सेवक ने हमें छड़ी से भी छूने से मना कर दिया। हमें पीटने के लिए उन्होंने बांस के वेत फेंके, ऊंची जाति के बच्चों ने हम पर कीचड़ उछाला गंभीर मार के डर से हमने वापस लड़ने की हिम्मत नहीं की।"[208]

यह उपन्यास ओडिशा में जाति के सवालों से निपटने के दौरान दलितों के कोई रोजमर्रा के जीवन और जीवन की कठिनाइयों को दूर करने के उनके संघर्ष पर केन्द्रित है। गौरतलब है कि दलितों की रोजाना की समस्याओं का रचनाकार ने कोई स्पष्ट समाधान नहीं दिया है। इसके बजाय वह अपने पात्रों को इस तरह से ढालता है कि वे अंततः अपने स्वयं के मूल्य का एहसास कराते हैं और अपने विरोधियों के खिलाफ अपने बुनियादी मानवाधिकारों की मांग करने के लिए लड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। यह और बात है कि वे आखिर में जातिगत लड़ाई हार जाते हैं जो वे अपनी मानवीय गरिमा के हक के लिए लड़ते हैं। हालांकि उपन्यासकार यह सुनिश्चित करता है कि वह दलित पात्रों को जीवन दृष्टि मूल्य देता है जो दलित सौंदर्यशास्त्र की मुख्य विशेषताओं में से एक है। जिसे नायक जी ने काफी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।

[208] दलित लिटरेचर इन इंडिया, पृ- 145

उपन्यास का अंत अत्यंत त्रासदी में होता है। आखिर में नायक जी ने गाँधी जी के ग्राम्य स्वराज के बदले डॉ. अंबेडकर का आह्वान करते हुए दलितों को अपने गाँव छोड़कर शहर में जाने के लिए कहते हैं। जहाँ पर वे कम से कम गुमनामी में रह सकेंगे। क्योंकि आज भी ग्रामीण भारत में दलित को शायद ही कोई स्वतंत्रता और सुरक्षा प्राप्त है। भौतिक साधनों और अवसरों के बिना वे अभी भी गांवों में रहना जारी रखते हैं साथ ही वे अपने गांवों में उच्च जातियों के एकाधिकार के खिलाफ विरोध प्रदर्शन करना भी चुनते हैं। नतीजा यह होता है कि उन्हें घोर अत्याचारों का सामना करना पड़ता है। अक्सर उनके घरों और दुकानों को उच्च जाति की भीड़ द्वारा ध्वस्त कर दिया जाता है।

उच्च जाति के इस तरह के रवैये के कारण वे अपने ही वतन में बेघर हो जाते हैं। 'भेद' में भी दलित समुदाय के नेता ललटू को ऊँची जातियों द्वारा झूठे मामले में फैसाय जाता है और गिरफ्तार कर लिया जाता है। इस प्रकार यह उपन्यास आज के दलितों के जीवन से संबंधित कई प्रश्नों को उठाता है। दलितों को अब क्या करना चाहिए? उन्हें कहाँ जाना चाहिए? भारत गणराज्य में उनकी हिस्सेदारी क्या है? सात दशकों की कल्याणकारी नीतियाँ और भारतीय संविधान में निहित समानता और न्याय, भारत से गरीब, अशिक्षा, कुपोषण और सभी प्रकार की बीमारियों को खत्म करने के लिए प्रयास होना चाहिए था। लेकिन ऐसा नहीं हुआ है इन्हीं को हटाने की कोशिश में हमेशा लगा हुआ है। यह सिर्फ कलाहांडी जिले की बात नहीं है न जाने कितने ऐसे भारत के प्रान्त का प्रतिनिधित्व करता है अखिल नायक का यह छोटा-सा 'भेद' उपन्यास।

शिक्षा दलितों को जाति दासता के बंधन से मुक्त करेगी, यह एक महत्वपूर्ण राजनीतिक रुख है क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा हथियार है जो व्यक्ति मन के अन्धकार को दूर कर सकता है। शिक्षा के महत्त्व के बारे में जोतिबा फुले और अंबेडकर के साथ-साथ वर्त्तमान कार्यकर्ताओं द्वारा इसकी वकालत की जाती है। दलित मुक्ति परियोजना के लिए आधुनिक शिक्षा की भूमिका की सराहना करते हुए नायक जी ने कई दरारें भी देखीं है जो एक महान परियोजना को परेशान और अंततः ध्वस्त करने के लिए जिम्मेदार है। अपनी दलित पृष्ठभूमि के कारण दिनामास्टर को अक्सर उनके उच्च जाति के समकक्षों द्वारा बेरहमी से अपमानित किया जाता है। जैसा कि पहले अध्याय में नायक जी वर्णन करते हैं कि कैसे स्कूल निरीक्षक एक उच्च शिक्षित ब्राहमण जानबूझकर उनका अपमान करने के लिए उसे उसके जाति के नाम से संबोधित करता है। अपनी

और से, अपने परिवार के लिए दिनामास्टर इस तरह के जातिगत अपमान को सह लेते हैं। उनके जीवन में सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अपने इकलौते बेटे को शांतिपूर्ण वातावरण में लाना और उन्हें सर्वोत्तम संभव शिक्षा देना है ताकि उन्हें एक बेहतर सामाजिक स्थिति में रखा जा सके। इसके बजाय ललटू शिक्षा बीच में ही छोड़ देता है और सम्पूर्ण सामाजिक कार्यकर्ता बन जाता है और आखिर में वह सवर्ण के झूठे मामलों में फसाया जाता है और उसे जेल हो जाती है। नायक ने आलोचनात्मक रूप से शिक्षा की भूमिका का मूल्यांकन करता है, उसके लिए शिक्षा का उपयोग दो उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है- नौकरी पाने के लिए और सामाजिक बदलाव में क्रांति लाने के लिए। जबकि पहला उद्देश्य अकेले व्यक्ति तक सीमित है, जबकि दूसरा समुदाय या समग्र रूप से समाज के लिए हैं। इस प्रकार उपन्यासकार शिक्षा की भूमिका को किसी अमूर्त शब्द में नहीं बल्कि समाज में वास्तविक भूमिका से परिभाषित करता है।

1980 और 1990 के दशक में हिंदुत्व आन्दोलन पुरे भारत में फैला हुआ था, बनविहारी त्रिपाठी और सोमेन अग्रवाल ये दोनों सज्जन उस समय हिंदुत्व के स्वयंभू रक्षक बन गए। वे गाँव में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाओं का आयोजन करते हैं और मुसलमानों और ईसाइयों के खिलाफ नफ़रत के अभियान में शामिल होते हैं। वे किसी भी तरह के धर्मान्तरण का विरोध करते हैं और दलितों और आदिवासियों को अपने अभियान में शामिल होने के लिए। प्रेरित करते हैं। जब ललटू लोगों के समर्थन से उनके षड्यंत्रकारी कथित कुकर्मों का विरोध करता है, तो वे उसे सबक सिखाने के लिए योजना बनवाते हैं और उसे झूठे मामले में फंसा कर जेल भेजते हैं। इनकी इस कार्य में संतोष पंडा नामक एक ब्राह्मण संवाददाता जिन्होंने शुरू में ललटू को एक भ्रष्ट सरकारी ऑफिसर को मारने में साथ देता है और एक रिपोर्टर के रूप में भर्ती कराता है। बाद में जब वास्तविक आलोचन आती है 'दलितों को एक गाय की हड्डियों को हिन्दू मंदिरमें रखने के लिए प्रेरित करने का आरोप लगाया जाता है, तब ब्राह्मण संवाददाता पंडा को ललटू के ईमानदारी पर संदेह होता है। ललटू अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए पूरी कोशिश करता है, लेकिन पंडा असंतुष्ट रहता है, खास कर ललटू अपनी चर्चा में छुआछूत की बात के साथ गोमांस खाने की बात आते ही वैदिक कालीन कथा लेकर जब वह कहता है कि "नहीं दादा उस किताब में है। ब्राह्मण द्वारा लिखे हुए शास्त्र में यह बात लिखी है। और बुद्ध के अहिंसा धर्म

'जीवे दया' वाणी के प्रचार के बाद जाकर ब्राह्मणों ने गाय खाना छोड़ी है।"[209] ललटू से इस तरह का जवाब सुन कर ब्राह्मण संवाददाता ने बाह्य रूप से, वह हर तरह की मदद करने का बादा करता है। लेकिन अन्दर ही अन्दर वह जातिगत पूर्वाग्रह के दबाव के आगे झुक जाता है। इस प्रकार पंडा न केवल दलितों के खिलाफ लड़ाई में अपने उच्च जाति के भाईओं का सिर्फ समर्थन नहीं करता है बल्कि यह भी देखने को मिलता है कि समाचार पत्र के पहले पृष्ट में ललटू समेत उसके और पंद्रह साथियों की गिरफ़्तारी को बड़े अक्षरों में प्रकाशित किया जाता है, ताकि लोगों को उसके कथित कुकर्म के बारे में पता चल सके। दलित आन्दोलन को नष्ट करने में संतोष पंडा की शैतानी भूमिका अनोखी नहीं है।

इस प्रकार की घटनाएं उपन्यासकार को यह टिप्पणी करने के लिए प्रेरित करता है कि हर कोई दलितों के खिलाफ है, नागरिक समाज, राज्य, पुलिस और मीडिया नायक के इस उपन्यास को अंग्रेजी में अनुवाद करने वाले राजुकुमार ने अपने लेख में जाति-आधारित भेदभाव शोध करने वाली समाजविज्ञानी विद्या देवी के हवाला देते हुए बताया है कि "हिन्दू सरकार, पुलिस, न्यायपालिका, प्रेस और सेना सहित अन्य सभी को नियंत्रित करते हैं। जब भी अछूतों के खिलाफ कोई हिंसा होती है, पूरी दुनिया उन पर आ जाती है।"[210] अखिल नायक उपन्यास में यह दिखाने की कोशिश करता है कि जब भी और जहां भी दलित अत्याचार हुए हैं, पूरा नागरिक समाज दलितों के खिलाफ उठ खड़ा होता है और असली होने का आरोप लगाता रहता है। पीड़ितों की मदद करने के बजाय वह अपराधियों का साथ देते दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए जब मंदिर प्रवेश को लेकर शंकर जमींदार और कुरुपा के बीच झगड़ा हुआ तो पूरे तेली समुदाय के लोग एक होकर डोम साही के रहने वाले सारे घर को आग लगा दिया। दुर्भाग्य से यह भारतीय जीवन में अक्सर एक वास्तविकता साबित हुई है।

यह तर्क दिया जा सकता है कि इस उपन्यास को लिखकर अखिल नायक ने मानव अधिकारों और सामाजिक न्याय के सवालों पर एक संवाद शुरू करने में सक्षम हैं। उच्च जातियों द्वारा दलितों पर किये जाने वाले अत्याचारों के विभिन्न रूपों को उजागर करके भारतीय जाति समाज के दोहरे मानकों या मानसिकता को पूरी तरह से उजागर करता है। वे स्पष्ट रूप से

[209] 'भेद', पृ- 87

[210] दलित लिटरेचर इन इंडिया, पृ- 157

दिखाएं हैं कि जाति का विचार हिंसा से घिरा हुआ है और किसी भी प्रकार के नागरीक समाज में निंदा की जानी चाहिए। वह भारतीय राष्ट्र राज्य की विभिन्न एंजेसियों की भूमिकाओं को उजागर करता है, जिसमें पुलिस, प्रशासन, शिक्षा प्रणाली और मीडिया सभी शामिल है, जो उच्च जातियों के साथ हैं और समस्या का हिस्सा बन जाते हैं। जाति के सवाल के अलावा लैंगिक समस्या जैसे बहस और चर्चा के लिए कई महत्त्वपूर्ण मुद्दों को भी हमारे सामने लाते हैं। इनमें शिक्षा की भूमिका, जाति और धर्मान्तरण, मीडिया की भूमिका, पारिस्थितिकी विकास और शांति शामिल है। एक दलित लेखक के रूप में नायक ने इन मुद्दों को उठाकर वे चाहेंगे कि उनके पाठक कम से कम उन पर विचार करें।

3.3. राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी

सामजिक सुधार के भागीदारी के बिना राजनीतिक भागीदारी असंभव प्राय: है। समाज में जब तक ऊँच-नीच की दीवारें तथा भेद-भाव रहेगा तब तक राजनीतिक स्तर पर हम कितना भी आगे चले जाएँ समाज का सही विकास या कल्याण नहीं हो पायेगा। इसलिए राजनीतिक सुधार से पहले सामाजिक सुधार होना अत्यावश्यक है। यह कार्य सबसे पहले साहित्य में दिखाई देता है क्योंकि साहित्य और राजनीति का गहरा सम्बन्ध है। इसलिए उपन्यास सम्राट कथाकार प्रेमचंद को कहना पड़ा था कि 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।' यह बात उपन्यासकार अखिल नायक और जयप्रकाश कर्दम को भी अच्छी तरह से पता है क्योंकि वह स्वयं डॉ. अंबेडकर के सामाजिक-राजनीतिक विचार से प्रभावित हैं। इसलिए वह अंबेडकर की तरह पृथक निर्वाचन की मांग करते हैं। उनको पता है कि दलितों का अगर सही मायनों में कोई नेतृत्वकर्ता हो सकता है तो, वह स्वयं दलित ही होगा किसी गैर-दलित के लिए उस जीवन संघर्ष, उस चेतना के साथ संवेदनात्मक स्तर पर जुड़ पाना एक कठिन सवाल है। दलित विमर्श में एक अरसे से इस बात पर बहस करता है कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है? या दलित समुदाय के सवालों पर किस तरह के नेतृत्व की आवश्यकता है? जो आज के समय में यह स्थिति बन रही है की जो भोगता है वही जानता है या राख ही जानती है जलने का दर्द। इसके अलावा एक बात है जो कि जरूरी है, वो है 'दलित चेतना' जिनके निर्धारित मानदंड ओम प्रकाश वाल्मीकि की पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र में अंकित हैं।

उपन्यासकार जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर उपन्यास बुद्ध, फुले और अंबेडकर दृष्टिकोण के नजरिये में लिखी गयी एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचना है। खास करके डॉ. भीमराव अंबेडकर के शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो के दर्शन को चरितार्थ करते नजर आता है। इसमें शिक्षा में आये दलितों में चेतना के चलते सामंती, ब्राह्मणवादी सोच रखने वाले लोगों की बौखलाहट और उनकी विभिन्न साजिशों का पर्दाफाश किया गया है। साथ ही अंबेडकरवादी आन्दोलन के मूलभूत सिद्धांतों पर जोर देकर राजनीतिक भागीदारी की पहल की गई है। चन्दन गाँव से शहर में पढ़ने के साथ-साथ दलित बच्चों को पढ़ाता और दलित अभिभावकों को अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही दलित युवकों को लेकर संगठन बना कर जाति-व्यवस्था तथा छुआछूत, ऊंच-नीच के खिलाफ दलितों में चेतना जागृत करके सामाजिक समानता के लिए आन्दोलन खड़ा कर देता है। इस सन्दर्भ में लेखक लिखते हैं "धीरे-धीरे चन्दन का स्कूल दलित-शोषित लोगों की सामाजिक गतिविधियों का केंद्र बन गया और जल्द ही इन गतिविधियों ने एक आन्दोलन का रूप ले लिया। समता और स्वतंत्रता के वातावरण में साँस लेने के लिए आतुर अधिक से अधिक लोग इस आन्दोलन के साथ जुड़ते गए। सामाजिक बदलाव के लिए शुरू हुआ यह आन्दोलन बृहत से बृहतर होता गया और थोड़े ही दिनों में शहर की गलियों से बाहर निकलकर यह आन्दोलन दूर-देहातों तक फैल गया।...सामाजिक समता, आर्थिक स्वनिर्भरता, महिला शिक्षा तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान आदिभी अब आन्दोलन के उद्देश्य में समाहित हो गए थे।"[211] इस तरह लेखक चन्दन के माध्यम से अंबेडकरी विचार को प्रस्तावित करते हैं। दलित समाज को शिक्षित और उनमें चेतना एवं संघर्ष की भावना पैदा करने के लिए डॉ. भीमराव अंबेडकर ने शिक्षित युवाओं से आह्वान किया था "दलित युवाओं को मेरा यह पैगाम है कि एक तो वे शिक्षा और बुद्धि में किसी से कम न रहें, दूसरे ऐशो-आराम में न पड़कर समाज का नेतृत्व करें। तीसरे समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी संभाले तथा समाज को जागृत और संगठित कर उसकी सच्ची सेवा करें।"[212] इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो उपन्यास का नायक चन्दन दलित समाज को शिक्षित और संगठित करके संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। अपने दोस्तों से कहता है "इन लोगों को शिक्षित करूंगा में, पढेंगे नहीं तो कैसे जानेंगे देश और दुनिया को...हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरुद्ध संघर्ष

[211] 'छप्पर', पृ- 82

[212] बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर, सम्पूर्ण वाङमय, खंड-17, पृ- 9

करना है। एक- दो आदमी के बस का नहीं है यह काम अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इस सबके लिए फौज चाहिए, वह फौज तैयार करूंगा मैं।"[213] चन्दन की तरह रतन कहता है "मैं प्रशासनिक सेवा में ही जाना चाहूँगा और यदि चला गया तो प्रशासनिक स्तर पर लोगों को जिस मदद की जरूरत होगी उसके लिए मैं सदैव तत्पर रहूंगा।"[214]

रजनी समानता और मानववाद की समर्थक तथा प्रगतिशील चेतना रखने वाली लड़की है। सवर्ण लड़की होते हुए भी दलितों के प्रति सहानुभूति रखती है। जिसके लिए वह अपने पिता के खिलाफ जाकर स्वतंत्रता और समानता की स्थापना के लिए चन्दन की अगुवाई में उठ खड़े आन्दोलन में सक्रियता निभाती है। समाज विरोधियों से वह कहती है "कौन कहता है व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता। आखिर आदमी की ही तो बनाई हुई सारी व्यवस्थाएँ, और सारी व्यवस्थाएँ आदमी के लिए ही हैं। तब, यदि किसी व्यवस्था में दोष हो और वह उत्थान की बजाय पतन का कारण बनती हो, तो उसे अवश्य बदला जा सकता है, और बदला जानाचाहिए।"[215] जिस प्रकार चन्दन द्वारा चलाये गये आन्दोलन में रजनी और कमला की भगीदारी को दिखाया गया है उससे यह प्रतीत होता है कि उपन्यासकार ने राजनीतिक भागीदारी में सिर्फ पुरुषों का नहीं बल्कि स्त्रियों की भूमिका को भी वरीयता दी है।

उपन्यासकार अखिल नायक को राजनीति के तौर पर डॉ. अंबेडकर के विचार को लाना था जिसके लिए वह उपन्यास के नायक ललटू के जरिये और उसके कई साथियों के माध्यम से गाँव वालों को समझा-बुझाकर सरपंच पद के लिए कैंडिडेट बनाया बी.ए. फेल रघु मेहेर को। ललटू और उसके दोस्तों ने गाँव-गाँव घूम कर सबके पास जाकर कहने लगे कि जो दूसरों का दास है, उसे क्या हम मालिक बनायेंगे? कितनी शर्म की बात है। छिः!' लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि बनबिहारी त्रिपाठी और सेठ सोमेन अग्रवाल दोनों सोचे थे कि मुंशी लब नियाल को खड़ा करके महाभारत जमायेंगे। जिसके लिए वह पानी के जैसे तीन-चार लाख खर्च भी किये थे, लेकिन ऐसा होता नहीं है और वह दो सौ वोट से हार जाते हैं। जिसके लिए उन्होंने

[213] 'छप्पर', पृ- 44

[214] वही, पृ- 43

[215] वही, पृ- 88

अपने अपमान का बदला लेने के लिए रघु मेहेर को पिटवाता है। जैसे "जिस दिन सरपंच की कुर्सी पर बैठने के लिए रघु मेहेर माला पहन कर पंचायत आया था, बेहेडा के शास्त्री चौक में उसकी पिटाई हुई थी। इस काम के लिए गाँव के कुछ शराबियों को दो हजार रूपया देना पड़ा था सेमी सेठ को। बात थाना-कचहरी तक गया। अब भी केस वैसे ही चल रहा है। पर सेमी सेठ का कुछ नहीं हुआ है।"[216]

अखिल नायक को डॉ. अंबेडकर का राजनीतिक वैचारिकता में आशा और भरोसा है। जिसके लिए उन्होंने शिक्षा के साथ-साथ अंबेडकर की तरह समाजिक बदलाव के साथ राजनीतिक बदलाव चाहते हैं। अंबेडकर यदि चाहते तो किसी उच्च पदों पर आसीन हो सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा न करके अपना जीवन और समय दलित लोगों और उनके आन्दोलन को समर्पित कर दिया। ललटू को भी उपन्यास में अंबेडकर की तरह चित्रित किया गया है। वह अगर चाहता तो पढ़ाई-लिखाई करके बाकि लोगों की तरह अपने ही जीवन को सुधार सकता था लेकिन वह ऐसा न करके पढ़ाई बीच में छोड़कर अपना जीवन और समय दलित समाज के मुक्ति के लिए अपने को न्यौछावर करता दिखाई देता है। और शायद यही अखिल नायक की राजनीति है कि अकेले शिक्षा से कुछ नहीं होगा, जिसके लिए उन्होंने अपने ही 'अधिनायकत्व' की बात करते हैं।

3.4. शैक्षणिक जगत में परिवर्तन के आकांक्षी

शिक्षा सबके लिए महत्त्वपूर्ण है, शिक्षा से ही व्यक्ति में चेतना पैदा होती है। शिक्षा वह साधन है जिससे व्यक्ति मन के अन्धकार को दूर करने में सहायक की भूमिका निभाती है। जिस प्रकार अन्धकार को दूर करने के लिए उजाले की जरूरत होती है वैसे ही मनुष्य के अन्दर छुपे अन्धकार जैसे विकारों को दूर करने के लिए शिक्षा जरुरी है। शिक्षा शास्त्र में शिक्षाविदों ने शिक्षा को जीवन व्यापी प्रक्रिया माना है। यानी व्यक्ति जीवन पर्यंत अनवरत शिक्षा ग्रहण करता रहता है, जिससे उसके अन्दर चेतना, तर्क बितर्क जैसे भावनाएं पैदा होती है। पाश्चात्य विद्वानों

[216] 'भेद', पृ- 49

का कहना है कि शिक्षा सबसे बड़ा हथियार है, जिसका इस्तेमाल दुनिया को बदलने के लिए किया जा सकता है।' फुले, अबेडकर जैसे चिन्तक ने शिक्षा को मुक्ति कहा है।

'छप्पर' के रचनाकार डॉ. जयप्रकाश कर्दम डॉ. अंबेडकर के जीवन दर्शन और विचारों से प्रभावित हैं तथा उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को क्रियान्वित करने के लिए उन्होंने चन्दन जैसे चरित्र का निर्माण किया है। वे भी अंबेडकर की तरह शिक्षा के महत्व को भली-भांति जानते हैं इसलिए चन्दन के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था में हो रहे अन्याय, अत्याचार को रेखांकित करते हुए शिक्षा व्यवस्था में बदलाव तथा परिवर्तन के आकांक्षी दिखाई देते हैं। पहले दलितों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था, सदियों से लेकर समाज के वर्चस्ववादी मनोवृत्ति ने गरीब, दलित समुदाय के लोगों को शिक्षा से वंचित तथा दूर रखा है। डॉ. अंबेडकर के प्रयासों से संविधान के द्वारा शिक्षा को मौलिक और हर किसी का जन्मसिद्ध अधिकार के अंतर्भुक्त किया गया। अब शिक्षा मिली है तो उनके मानसिक शोषण बढ़े हैं। शिक्षा क्षेत्र में बढ़ते भेद-भाव के कारण आज भी कुछ बच्चे शिक्षा से वंचित हैं। उनमें शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण सवर्ण समाज उनकी शिक्षा पर कटाक्ष करता है, उन्हें नीचा दिखाने का प्रयास करता है। इसी तरह काणा पंडित भी सुक्खा को अपने बेटे को उच्च शिक्षा दिलाने की इच्छाशक्ति का मजाक उड़ाता है "तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्म शास्त्र से बड़ा नहीं हो सकता तू। अपमान करता है धर्म शास्त्रों का, वेद-वेदांगों का और पूछता है क्या हुआ, नास्तिक...।"[217]

अक्सर शिक्षा-संस्थानों में दलित बच्चों के साथ भेदभाव किया जाता रहा है, चन्दन ने भी जब गाँव से शहर पढ़ने के लिए आता तो कॉलेज में उसके सहपाठी उससे भेदभाव करते दिखाई देते हैं। इसलिए वह दलितों को सामाजिक समानता दिलाने के लिए शिक्षित करता है और संगठनबद्धता जारी करता है। शिक्षा की सार्थकता और जीवन के उद्देश्य के बारे में बताता है कि 'हमारी शिक्षा की सार्थकता और हमारे जीवन का श्रेय इस बात में है कि हमें अपने साथ-साथ अपने समाज के उत्थान और विकास की और भी ध्यान देना चाहिए।' इसलिए वह अपनी शिक्षा का उपयोग सदियों से दासता और गुलामी के जकड़े दीनहीन समाज के उत्थान के लिए करना चाहता है। इतना ही नहीं दलितों के लिए शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए बताता

[217] 'छप्पर', पृ- 35

है कि शिक्षा से ही सोये हुए दलितों में जागृति आएगी तभी वे शोषण की बेड़ियों को तोड़ पाएंगे बिना शिक्षा के दलित समाज के लोगों की मूक जबान को वाणी नहीं मिलेगी। इसलिए वह शिक्षा के साथ-साथ संगठन और संघर्ष पर जोर देते हुए दलितों को संबोधित करता हुआ कहता है "हमें समाज से टक्कर लेनी है, सत्ता से लड़ाई लड़नी है, जुल्म और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करता है। एक-दो आदमी के बस का नहीं है यह काम। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इस सबके लिए फौज चाहिए, वह फौज तैयार करूँगा मैं।"[218] इन्हीं भेदभाव को मिटाकर सबको नैतिक तथा व्यवहारिक और न्यायपूर्ण शिक्षा देने की वकालत करते हैं।

सदियों से लेकर आज तक सवर्ण समाज के वर्चस्ववादी मनोवृत्ति ने गरीब, दलित समुदाय के लोगों को शिक्षा से वंचित रखा है। डॉ. अंबेडकर के प्रयासों से संविधान के द्वाराशिक्षा को मौलिक अधिकार में शामिल किया गया और यह भी कहा गया की शिक्षा हर किसी का जन्म सिद्ध अधिकार है। यह बात अखिल नायक भली-भांति जानते हैं और शिक्षा के महत्व के बारे में अवगत हैं। प्रेमचंद की तरह प्रत्यक्ष रूप में उन्होंने शिक्षा का सारा खर्च सरकार वहन करे ऐसा तो नहीं कहा है परन्तु परोक्ष में शिक्षा के व्यवसायीकरण से मुक्त रख के कैसी शिक्षा दिया जाना चाहिए इसके बारे में अवश्य कहा है। चूँकि अकेले शिक्षा से मदद नहीं मिलेगी, जैसा कि हम कथा के आरम्भ से जानते हैं कि ललटू पढ़ाई बीच में ही छोड़ देता है। वह शिक्षा एक निश्चित प्रकार की शिक्षा है जो शायद सरकारी नौकरी या प्रमाणपत्र देगी। शिक्षा के महत्त्व को व्यावहारिक रूप से समझते हुए ललटू समाज में हो रहे उत्पीड़न और लूट के खिलाफ लामबंद होता है। संगठित हो के अपने अन्य साथियों के साथ संघर्ष करता है। गाँव में स्थापित जातीय श्रेष्ठताबोध और अहंकार के खिलाफ तार्किक तरीके से समाप्त करने का प्रयास करता है। जिसके लिए उन्होंने अंबेडकर की तरह राजनीतिक सक्रियता और शिक्षा का मेल कराया है। चूँकि शिक्षा से स्थानीय इतिहास, संविधान जैसी कुछ चीजें ये सभी जागरूकता और चेतना का निर्माण करती है। इसलिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण है।

उपन्यासकार अखिल नायक ने ललटू के माध्यम से शिक्षा के महत्त्व को समझाते हुए। शिक्षालयों में छुआछूत, अंधविश्वास जैसी भावनाओं को दूर करने की वकालत करते हैं। जब संतोष पंडा ललटू से पूछता हुआ कहता है कि मैंने सुना है कि तुम्हारे गाँव के स्कूल में दो सालहो

---

[218] वही, पृ- 44

गया है गणेश और सरस्वती पूजा नहीं होती है। तब ललटू शिक्षा के सही मायने बताते हुए कहता है "स्कूल कॉलेज में तो दादा विभिन्न जाति और धर्म के बच्चे पढ़ाई करते हैं। तो वहां पर एक ही धर्म की पूजा होना क्या सही है? और स्कूल कॉलेज तो ज्ञान अर्जन के जगह हैं, वहां पर अंधविश्वास फैलाना क्या सही बात है? इसलिए हम गाँव वाले आपस में विचार करके स्कूल में पूजा बंद करवा दिए हैं।"[219] आगे वह अपना तर्क देते हुए कहता है कि "सभी पूजा, सभी देवता तो अंधविश्वास है दादा। अगर कोई पढ़ाई नहीं करके गणेश या सरस्वती पूजा करेगा तो क्या उसके दिमाग में विद्या अपने आप आ जायेगी?"[220]

इन सारी बातों से यही प्रतीत होता है कि शिक्षा सबको मिलनी चाहिए और शिक्षा जैसे संगठन में छुआछूत, अंधविश्वास और साम्प्रदायिकता से मुक्त होकर नैतिक विकास की शिक्षा देनी में चाहिए। साथ ही शिक्षा का व्यवसायीकरण न करके शिक्षा सबके लिए जरूरी हो। 'शिक्षा को विद्यार्थी दिलाना नहीं होता है, बल्कि विद्यार्थी को शिक्षा दिलाना होता है।'

3.5 भाषा-शैली

भाषा, विचार विनिमय का सबसे बड़ा साधन है। जिससे किसी भी कृति या रचना को अर्थवत्ता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उपन्यासकार अखिल नायक और डॉ. जयप्रकास कर्दम की भाषा मानवता की तरफदारी करती है साथ ही शोषण के खिलाफ खुल कर आवाज उठाती है। अखिल नायक ने अपने उपन्यास में ग्रामीण जीवन का वर्णन किया है। वहां कर्दम ने अपने उपन्यास में शहरी और ग्रामीण जीवन का वर्णन किया है। जिसमें समय, पात्रानुकूल तथा परिस्थिति जनित सरल और सहज भाव की भाषा का उपयोग किया है। भाषा का विश्लेषण करें तो ऐसा लगता है कि शब्दों के पास रचनाकार नहीं गया है बल्कि शब्द स्वयं उनके पास उनके रचना- संसार में आकर सम्मिलित हो गए हैं।

उपन्यासकारों ने शब्दों का प्रयोग अत्यंत सोच-समझ कर किया है। उपन्यास का हर एक वाक्य का अपना महत्त्व है। उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि सदियों से सोये हुए समाज को

[219] 'भेद', पृ- 85-86
[220] वही, पृ- 86

जागृत करना उसके साथ-साथ शोषण, अत्याचार के खिलाफ विद्रोह और अन्धविश्वास जैसी विकृतियों से दूर होने से गुजरती है। इसलिए उपन्यासों की भाषा प्रभावमयी, स्पष्ट, बोधगम्य और आम-आदमी की है।

पात्रानुकूल भाषा : डॉ. जयप्रकाश कर्दम के उपन्यास में दलित, सवर्ण, ग्रामीण-शहरी, शिक्षित और अशिक्षित आदि पात्रों का समावेश हुआ है। सवर्ण व्यक्ति की मानसिकता का परिचय 'काणा पंडित' यानी श्रीराम शर्मा के कथन से स्पष्ट होता है। "आशीर्वाद कहता है इसे। अनर्थ कर दिया तूने, महाअनर्थ।"[221] "अछूतोद्धार का नतीजा है यह सब। और करो हरिजनों का उद्धार, और सिर चढ़ा लो इनको। अभी तो देखना हम सबके सिर पर मूतेंगे ये?"[222] अशिक्षित ग्रामीण महिला की भाषा का परिचय रमिया के कथन से स्पष्ट होता है, जब वह अपने पति सुक्खा से कहती है कि "आगे पढ़कर ही कौन सा कलक्टर बन जाएगा, बड़े आदमी जाते हैं बड़े होदे तक। छोटे आदमी की क्या बिसात है, गुजारे लायक हिल्ला-रुजगार मिल जाए छोटा-मोटा, बस बहोत है।"[223]

उपन्यासकार अखिल नायक ने अपने उपन्यास में दलित, सवर्ण, शिक्षित-अशिक्षित, वृद्ध, युवक और जैसे ग्रामीण और कस्बाई आदि पात्रों का समावेश किया है। सवर्ण व्यक्ति की मानसिकता का परिचय वनबिहारी त्रिपाठी के विद्रूप भरे कथन से स्पष्ट होता है, जब वह कहता है कि "संवाददाता! क्या फ़ालतू संवाददाता हो! इधर-उधर से सच-झूठ जोड़ कर दो लाइन क्या लिख दिया है, क्या वह संवाददाता है! ठीक है, वह अपने घर में संवाददाता बने, तो क्या अपने से बड़ों की बात भी नहीं मानेगा?"[224] आगे वह डोम को फटकार भरी बातें सुनाते हुए सेमी सेठ से कहता है "जो भी कह सेठ घर में थोड़ा खाने लायक हो जाने से डोम भी इस तरह दिखाते हैं कि और बात छोड़! और दो अक्षर पढाई कर लेने से, वे समझते हैं उन्होंने वेद-उपनिषेद सब कुछ जान लिया है।"[225] एक अशिक्षित ग्रामीण विधवा दलित महिला की भाषा का परिचय चेमणि बूढी की उक्ति से स्पष्ट होता है। जब वह ललटू को कहती है कि "कागजाद बनवाने के लिए बिड़ो महाशय ने दो सौ रुपये काट लिया है।"[226]

---

[221] 'छप्पर', पृ- 35

[222] वही, पृ- 38

[223] वही, पृ- 11

[224] 'भेद', पृ- 51

[225] वही, पृ- 36

[226] वही, पृ-36

उपन्यासकार अखिल नायक ने अपने उपन्यास में पात्रानुकूल तथा अपने आस-पास की भाषा का भी प्रयोग किया है। ‘भेद’ उपन्यास में प्रयुक्त परिवेशगत भाषा का उदाहरण है - “सरकार ने पच्चीस रुपये तनख्वाह तय किया है तो हम पच्चीस रुपये ही लेंगे, अठन्नी भी कम नहीं। हम सिंग पकड़ेंगे और कोई दूसरा दूध पियेगा ऐसा और नहीं चलेगा। कोई अगर सोच रहा है कि हमारे ऊपर दया कर रहा है, तो हमें वह दया नहीं चाहिए, वह खुद अपने बारे में सोचे। खुद चावल का थैला पीठ पर लादकर ट्रक में डाले, हम उसके बारे में कुछ नहीं बोलेंगे।”[227]

गाँव के पंचायत वालों ने दनार साहू के भतीजा को अपने जाति में लेने के लिए दंड स्वरुप दिनामास्टर को अपना फैसला सुनाया हुआ वाक्यांश को भी देख सकते हैं- “पर मास्टर, युवराज अब फिर से हमारी जाति में आएगा, उसके लिए जो खर्च होगा उसे कौन देगा? कितना खर्च है? जाति भाईओं के खाने के लिए पंद्रह किलो चावल, दो किलो दाल, सब्जी, तेल-मसाला और दो सौ रुपया।”[228]

अखिल नायक के साहित्य की उपज गाँव की मानी जानी चाहिए, अपने गाँव के लोग और अपने गाँव के परिवार उनके लेखन का केंद्रीय विषय है। इसलिए उनके उपन्यास में गाँव और अलग-अलग जगह का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में मिलता है। जिससे उस स्थान विशेष का पता चलता है। उदाहरण स्वरुप – “क्यों इन लोगों से दो सौ लिए हो?” ललटू जाकर धरमगड बी.डी.ओ. से पूछता है। जवाब में बी.डी.ओ. कहता है “ये पूछने वाला तू कौन होता है?” उसके प्रतुत्तोर/जवाब में फिर ललटू कहता है “मैं कौन हूँ? मैं तेरा बाप हूँ। बोलते हुए बी.डी.ओ. को एक थप्पड़ लगया।”[229]

---

[227] वही, पृ-50

[228] वही, पृ-29

[229] वही, पृ-36

उपसंहार

साहित्य और समाज का एक दूसरे से गहरा संबंध है। साहित्य समाज का प्रतिबिंब मात्र नहीं है, बल्कि समाज के भीतर जो मौजूद गहन सामाजिक अनुभूतियाँ हैं, उसको भी दिखाने का प्रयास साहित्य के माध्यम किया जाता है। समय-समाज की जटिलताओं, विकृतियों और संभावनाओं को भी साहित्य के द्वारा उद्घाटित किया जाता है। उद्घाटन की यह प्रक्रिया साहित्य के अंतर्गत आने वाली विभिन्न विधाओं के माध्यम से किया जाता है और इसमें उपन्यास विधा की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आधुनिक कथा लेखन के शुरुआती दौर में कथा-साहित्य के अंतर्गत आने वाली उपन्यास एक सशक्त विधा है। जैसे-जैसे उपन्यास के शिल्पगत रूपों में बदलाव आते गए जिससे उपन्यास अपनी समग्रता में जीवन के हर एक पहलुओं की अभिव्यक्ति होती गई। दलित साहित्य का केंद्र बिंदु है- मनुष्य। अर्थात् मनुष्य का उत्थान ही दलित साहित्य का केंद्रीय स्वर या प्रयोजन है, जो मानवीयता की तरफदारी करता है। इसके साथ ही यह मानव मुक्ति के लिए लड़ने वाला सम्यक क्रांतिकारी साहित्य है। ये मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना पसंद करता है, जो साहित्य मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं देखता वह उसे गौण या नकारता है। दलित-साहित्य मुख्यतः बुद्ध, फुले और अंबेडकर के दर्शन तथा विचार को लेकर लिखा गया है। जिसमें समानता, स्वतंत्रता, बंधुता और भाईचारा जैसी भावनाएं समावेशित हुई है। दलित साहित्य का सृजन समाज तथा राजनीतिक व्यवस्था में सुधार एवं आमूलचूल परिवर्तन की वकालत करता है जो दलित साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। भारतीय समाज के सामाजिक चिंतन तथा संरचना में अनेक सामाजिक विषमताएं जैसे ऊँच-नीच, कटुता, अमानवीयता तथा लिंगगत भेदभाव आदि के विरोध में आक्रोश भरा स्वर, सामाजिक न्याय को नया मोड़ देता है। इसके साथ ही सामाजिक जीवन में व्याप्त कई रूढ़ियों, कुरूतियों, पुर्नजन्म, अंधविश्वास जैसे भ्रामक कल्पनाओं को नकारने का साहस दलित (उपन्यासों) साहित्य में नजर आता है। साथ ही परिवर्तनशील जीवनमूल्यों को अपनाने का नया दृष्टिकोण उसको वैज्ञानिक धरातल पर लाता है। उतना ही नहीं दलित-साहित्य, भारतीय संविधान के प्रति जागृति का भाव पैदा करता है जिससे समाज में न्याय, समता, स्वतंत्रता के संवैधानिक प्रावधान को व्यवहारिक परिणति में अंतर्भुक्त किया जा सके। दलित साहित्य में त्रासदी के साथ परिवर्तनशील विचारों को भी उद्घाटित किया गया है। यह चिंतन समाज में संवैधानिक प्रावधान का प्रतिफलन है जो बाबा साहब भीमराव अंबेडकर के अथक परिश्रम के प्रयासों से संभव हो पाया है। जिनके द्वारा दलितों

को शिक्षा मिली, जिससे उनमें चेतना पैदा हुई और अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए अपने को तैयार किया। समाज में फैली अंधविश्वास, रुढ़ियों और परंपराओं के खिलाफ जन-आन्दोलन चलाया। सामाजिक समस्यायों से लड़ते हुए उनमें उभरता विश्वास, शिक्षा के कारण ही बुलंद हुआ है। दलितों को शिक्षा से वंचित रख कर उनकी सभ्यता, संस्कृति आदि को छीनकर सवर्ण ने सदियों से उन्हें पीड़ित, अन्यायी, लाचार, कमजोर तथा असहाय बनाकर कष्टमय जीवन जीने के लिए विवश किया है। लेकिन दलितों में उभरे शिक्षित मध्य वर्ग ने साहित्य के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति को वाणी देते हुए कष्टमय, अस्थिर और अपमानित जीवन को परिवर्तनशील विचारों से जोड़ते हुए हर समुदाय के जनकल्याण, विश्वबन्धुता तथा मानवीयता जैसे कल्याणकारी विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। दलित साहित्य में चित्रित सामाजिक और राजनीतिक चिंतनबोध मनुष्य को स्वार्थ जैसे भावना से विरत कर जीवन को ऊपर उठाते हुए सर्वसामान्य भावभूमि के पास खड़ा करता है। सदियों से पशुतुल्य जीवन जीने के लिए विवश, पीड़ित, दलित पुरुष स्त्री आदि को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए कार्यरत है।

ये दोनों उपन्यास अंबेडकर के जीवन दर्शन तथा चिंतनधारा से प्रभावित है। इसमें अंबेड़कारी विचारों का विकसित रूप देखने को मिलता है। इन उपन्यासों में सामाजिक भेदभाव, अन्याय, उत्पीड़न के खिलाफ आन्दोलन और अपने हक़ के लिए स्वयं लड़ना आदि देखने को मिलता है। स्वतंत्रता व्यक्ति के नैसर्गिक विकास के लिए जरुरी है। स्वतंत्रता के अभाव के बिना व्यक्ति के जीवन में गुलामी को बढ़ावा प्राप्त होता है। समानता के अभाव में स्वतंत्रता का कोई मायना नहीं है, स्वतंत्रता के नाम पर समाज के कुछ बहुसंख्यक वर्ग अपना अधिकार जमा बैठे हैं। यह दोनों स्थिति व्यक्ति और समाज के विकास में बाधक है। इतना ही नहीं यह उपन्यास समाज के कठोर दकियानूसी नियम, अंधविश्वास, स्त्री के प्रति संकीर्ण मानसिकता, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षणिक और राजनीतिक जैसे शोषण दलित जीवन की त्रासदी, पीड़ा, दुर्दशा, और दयनीय अवस्था के साथ परिवर्तनवादी जीवनमूल्यों को स्थापित करते हुए शेष भारतीय समाज की ओर इशारा करता है। इन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इतनी सारी सामाजिक समस्याओं के बावजूद भी वर्चस्ववादी व्यवस्था को बरकरार रखने वाली शक्तियों तथा कोशिशों के खिलाफ उभरता जन-आन्दोलन दिखाई देता है। पहले दलित अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत नहीं करते थे, लेकिन उनमें शिक्षा का प्रसार होने के कारण, वे संगठित होकर, अन्याय के खिलाफ अपनी आवाज को मुखरित करने में सक्षम है। यही चिंतनबोध इन दोनों कृतियों को दूर दृष्टि प्रदान करता है।

इन उपन्यासों का मूल उद्देश्य दलितों में चेतना का विकास करना है साथ ही समाज में उनकी स्थिति, उनकी संस्कृति, रहन-सहन, रीति-रिवाज उनकी आर्थिक-जीवन स्थिति एवं संघर्ष आदि को पाठक के सम्मुख उपस्थित करता है। ये उपन्यास भारत देश के दो भूभाग के दलित जन की जीवन-शैली का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं।

इन उपन्यासों की तुलना करते हुए दोनों रचनाकारों के कृति का युग-विशेष, आन्दोलन-विशेष एवं प्रवृत्ति और विषय-वस्तु, अंतर्वस्तु का साम्य-वैषम्य परक अध्ययन किया गया है। उपन्यास के पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन में भौगोलिक, शिक्षा और साक्षरता के साथ एवं लिंगगत व अवस्था विशेष आधार के सहारे को प्रयोग में लाया गया है। इतना ही नहीं रचनाकारों के सामाजिक उद्देश्य को जानने के लिए उनकी रचनाओं का उद्देश्यपरक अध्ययन किया गया है। जिससे उनकी रचना के उद्देश्य को परिपुष्ट किया जा सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रंथ :

1. अखिल नायक, 'भेद', डुडुलि प्रकाशन, चंद्रशेखरपुर, भुबनेश्वर, प्रसार- पश्चिमा पब्लिकेशन : 2010
2. जयप्रकाश कर्दम, 'छप्पर', राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र.सं-1994, पहला-संस्करण, नई दिल्ली: 2017

सहायक ग्रंथ सूची :

1. Edited by Joshil K. Abraham and Judith Misrahi-Barik, Dalit Literatures In India, First published 2016
2. अरुंधति रॉय, अनुवाद : अनिल यादव 'जयहिंद', रतन लाल, एक था डॉक्टर एक था संत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण : 2019
3. अनु. राजकिशोर, डॉ. भीमराव आंबेडकर, जाति का विनाश, फारवर्ड प्रेस प्रकाशक : 2018
4. इंद्रनाथ चौधरी, तुलनात्मक साहित्य की भूमिका नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली : 1983
5. एम. एन. श्रीनिवास, आधुनिक भारत में जाति, राजकमल प्रकाशन, दूसरा आवृति : 2009
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरा संस्करण : 2017
7. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सफाई देवता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
8. कंवल भारती, दलित-धर्म की अवधारणा और बौद्धधर्म, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली : 2012
9. कंवल भारती, दलित साहित्य आऊईर विमर्श के आलोचक, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. स. 2009
10. गोपाल राय, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 2016

11. जयप्रकाश कर्दम, बौद्ध धर्म के आधार-स्तम्भ, आतिश प्रकाशन, दिल्ली : प्र. स. 1997
12. जयप्रकाश कर्दम, दलित विमर्श : साहित्य के आइने में, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण 2009
13. जयप्रकाश कर्दम, दलित साहित्य : सामाजिक बदलाव की पटकथा, अमन प्रकाशन, कानपुर : 2016
14. डॉ. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली-2018
15. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, डॉ. अंबेडकर : दलित और बौद्ध धर्म, नवभारत प्रकाशन,दिल्ली-93, दिल्ली : 2009
16. डॉ. मायाधर मानसिंह, ओड़िया साहित्य का इतिहास, ग्रंथ मंदिर, विनोद बिहारी, कटक, संस्करण : 2011
17. निरंजन, मनुष्यता के आईने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लिमिटेड, प्रथम संस्करण : 2010
18. प्रो. चमनलाल, दलित साहित्य एक मूल्यांकन, राजपाल एंड सन्ज़, नई दिल्ली, 2017
19. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, आधार प्रकाशन, पंचकुला हरियाणा, द्वितीय संस्करण : 2018
20. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय,लोकभारती प्रकाशन, चौथा पेपरबैक संस्करण : 2019
21. शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण : 2016
22. सं. डॉ. रणजीत, जाति का जंजाल, लोकभारती प्रकाशन, पहला संस्करण : 2013
23. सं. डॉ.नामदेव और डॉ. नीलम, ‘छप्पर’ की दुनिया (मूल्यांकन और अवदान), अनुज्ञा बुक्स प्रकाशक, प्रथम संस्करण : 2020
24. सं. बासुदेव सुनानी, ओड़िया दलित साहित्य, ईशान-अंकित प्रकाशन, भुवनेश्वर : 2014
25. सच्चिदानंद सिन्हा, जाति व्यवस्था (मिथक, वास्तविकता और चुनातियाँ), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण : 2016

परिशिष्ट

1. रचनाकारों की जीवनी परिचय

जयप्रकाश कर्दम : हिन्दी के एक दलित साहित्यकार हैं। आपका जन्म 05 जुलाई 1958 को ग्राम इंदरगढ़ी, हापुड़ रोड, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ है।
शिक्षा- एम. ए. (दर्शनशास्त्र, इतिहास, हिन्दी) और हिन्दी साहित्य में पी. एच. डी. ।
साहित्य-सृजन- दो उपन्यास 'करुणा'(1984) और 'छप्पर'(1994), एक बाल उपन्यास (श्मशान का रहस्य)। एक कहानी संग्रह, दो कविता संग्रह, तीन आलोचना/शोध परक पुस्तकें प्रकाशित हैं।
पुरस्कार/सम्मान- 'छप्पर' के लिए मध्यप्रदेश दलित साहित्य अकादमी द्वारा प्रथम पुरस्कार, 'चमार' के लिए भारतीय दलित साहित्य अकादमी द्वारा डॉ. अंबेडकर नेशनल आवर्ड, 'गूंगा नहीं था मैं' के लिए राष्ट्रीय अस्मितादर्शी साहित्य अकादमी द्वारा कबीर सम्मान से सम्मानित और भारत सरकार द्वारा दलित साहित्य पर शोध हेतु फेलोशिप एवं भारतीय बौद्ध महासभा उत्तर-प्रदेश द्वारा बौद्ध साहित्य लेखन के लिए फेलोशिप सहित कई अन्य सम्मान से सम्मानित हैं।

अखिल नायक : अखिल नायक ओड़िया साहित्य के एक दलित रचनाकार हैं। उनका जन्म 13 मार्च सन् 1970 को कालाहांड़ि जिले के रइनागुड़ा नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम दैतारी नायक और माता का नाम बसुमती देवी हैं। उन्होंने ब्रह्मपुर विश्वविद्यालय, गंजाम से ओड़िया साहित्य में एम. ए. किया है। उनकी अध्यापना कार्य सरकारी महिला महाविद्यालय, भवानीपाटना कॉलेज के ओड़िया विभाग में रहा है।

उनकी प्रमुख कृतिया हैं – जिसमें कविताएँ – 'गधुआबेला' (1993), 'गुलिखटी'(1996), 'धोब फरफर'(2001), 'धिक'(2008), 'खेत पुराण'(2013), 'देशद्रोही' और 'कालाहांडी' आदि प्रमुख है। 'भेद'(2010) उनका पहला उपन्यास है।

उनके रचना के कृतियों के लिए उन्हें बसंत मुदूलि कविता पुरस्कार और कालाहांडि युव प्रतिभा पुरस्कार सयुक्त रूप में 1996 को मिला। दीपक मिश्र कविता पुरस्कार 2011 को और नक्षत्र साहित्य सम्मान 2012 को मिला था।

2. शोध आलेख

'छप्पर' और 'भेद' उपन्यासों में दलित जीवन संदर्भ

- शशिकांत नाएक

दलित वर्ग के लोग हमेशा से उपेक्षित थे। अनेक साहित्यकारों ने इन लोगों के लिए आवाज उठाई। कई वर्षों के संघर्ष के बाद आज दलित साहित्य अपने स्वरूप को प्रकट कर पाया है। देखा जाए तो हिंदी और ओड़िया भाषा में दलित साहित्य का उदय इक्कीसवीं सदी के शुरू में हुआ। दलित जीवन संबंधी उपन्यास कुछ गैर-दलित रचनाकारों द्वारा लिखे गए हैं। लेकिन उसे दलित साहित्य के अंतर्गत रखा जाना चाहिए या नहीं यह एक बहुत बड़ा सवाल है। इसके बारे में सुप्रिया मलिक 'दलित साहित्य : एक आलोचना' शीर्षक लेख में लिखती हैं, "आधुनिक युग में गैर-दलित साहित्यकारों की रचना, जिसमें दलित चरित्र, चित्र, परंपरा और संस्कृति को विकृत और वीभत्स करने का प्रयास जारी रहा है। ऐसे में इन सभी को दलित साहित्य के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता है।" (डॉ. बासुदेव सुनानी, ईशान अंकित प्रकाशन, भुवनेश्वर, 2014, पृ. 263)। अतः इससे यही स्पष्ट है कि हिंदी और ओड़िया दलित साहित्य में स्वानुभूति और सहानुभूति जैसे सवाल केंद्र में आए। आलोचक मैनेजर पांडेय का यह कथन इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि 'राख ही जानती है जलने का दर्द', दलित होने की पीड़ा सिर्फ दलित जानता है। आगे ओड़िया दलित साहित्य की आलोचक सुप्रिया मलिक कहती हैं, "गैर-दलितों की रचना केवल कल्पना आधारित है। उसमें अनुभूति, प्राण, हृदय की भाषा नहीं है, केवल मस्तिष्क की भाषा का प्रयोग करके रचित रचनाएँ भाषा और शैली की दृष्टि से सुंदर और सुखात्मक हो सकते हैं, किंतु भाव और चेतना की दृष्टि से सही नहीं। गोपीनाथ मोहंती के 'परजा' और 'हरिजन' का उदाहरण लिया जा सकता है।" (वही, पृ. 260)

आजादी के बाद भारत में संविधान लागू होने से दलितों के बीच एक शिक्षित मध्य वर्ग का उदय होता है। उसने अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य को माध्यम बनाया और सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन के विविध क्षेत्रों में अपनी भागीदारी और हस्तक्षेप को बढ़ाया। उसी के प्रभाव स्वरूप शिक्षित मध्य वर्ग के बीच से जयप्रकाश कर्दम और अखिल नायक जैसे लेखक विभिन्न भाषाओं में आते हैं। इनके उपन्यासों में दलित चेतना को देखा जा सकता है।

1990 के दशक के आस-पास अखिल भारतीय स्तर पर भारत में दलित आंदोलन ने दलित राजनीति को प्रभावित किया और दलित राजनीति ने दलित साहित्य को। इस आंदोलन से साहित्य और राजनीति के बीच एक संबंध बना। जयप्रकाश कर्दम (छप्पर, 1994) और अखिल नायक (भेद, 2010) ने दलितों के साथ होने वाले शोषण को उजागर किया। इनमें प्रमुख रूप से शिक्षा प्राप्त करना, अंधविश्वासों को दूर करना, भूमिहीन मजदूर के मुद्दे को उठाना, दलितों के बीच सामाजिक नेतृत्व की पहचान करना, दलित युवाओं को गांधी, फुले, अम्बेडकर और मार्क्स की चेतना में एक अंतःसूत्र स्थापित किया जाना आदि अनेक मुद्दे निहित हैं।

'भेद' उपन्यास प्रमुख रूप से ओड़िशा में स्थित भेद-भाव को दर्शाता है। यह भेद-भाव दलितों के लिए पीड़ा दायक है। इसे इस उपन्यास में देखा जा सकता है। 'छप्पर' उपन्यास में कर्दम ने उत्तर-प्रदेश के दलितों की पीड़ा, शोषण और विद्रोह का चित्रण किया है। साथ यह भी स्पष्ट किया है कि भारतीय समाज में व्यक्ति से अधिक जाति का महत्व है। जाति भेद ही दलितों के शोषण का प्राथमिक कारण है, जिसकी वजह से दलित हमेशा प्रताड़ित होते रहे हैं। दलितों का शारीरिक और मानसिक शोषण तो होता ही रहा है, लेकिन इन दो उपन्यासों में उनके आर्थिक शोषण को भी दर्शाया गया है। 'भेद' उपन्यास में कथा की शुरूआत दो सवर्ण और दलित बच्चों की लड़ाई से होती है। उपन्यासकार ने इन दोनों के जरिए सवर्ण समाज के दकियानूसी षड्यंत्रकारी नियम-कानून की पोल खोलने की कोशिश की है। सवर्ण समाज दलित को अछूत तो मानता ही है साथ ही शुद्धिकरण जैसे दकियानूसी नियम का अनुपालन भी करता है। शुद्धिकरण के नाम पर दलितों से पैसा ऐंठे जाते हैं, जिससे वह आर्थिक शोषण का शिकार बनते हैं। इसके कारण उन्हें कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ललटू के पिता दिनबंधु दुरिया से गाँव के पंच कहते हैं- "युवराज की जो जाति चली गई है उसे फिर से जाति में लाने के लिए जो खर्च होगा वह कौन देगा? खर्च भी कितना? जाति भाईयों के भोज के लिए पंद्रह मण चावल, दो मण दाल, सब्जी, तेल-मसाला-कम से कम दो सौ रुपए।" (अखिल नायक, भेद, डुडुली, प्रकाशन, 2010, पृ. 29)

'भेद' की तरह 'छप्पर' उपन्यास की कथा शुरू होती है चंदन के गाँव से शहर पढ़ने जाने को लेकर। कथा से पता चलता है कि वहाँ के सवर्ण नहीं चाहते हैं कि एक चमार का लड़का उच्च शिक्षा के लिए शहर जाए, क्योंकि इससे पहले कोई सवर्ण का लड़का कभी गाँव से बाहर पढ़ने के लिए नहीं गया है। सुक्खा की इस इच्छाशक्ति से वहाँ के सवर्ण नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं और अपने बेटे को वापस बुलाने को कहते हैं। जब सुक्खा नहीं मानता तब यह कहते हुए कि सुक्खा शास्त्र का अपमान कर रहा है, गाँव के पंच उसका आर्थिक शोषण करने के साथ-साथ उसे गाँव से बहिष्कृत कर देते हैं। जैसे 'गोदान' में गाँव के पंच होरी को किसान से मजदूर बनने के लिए विवश कर देते हैं। उदाहरणस्वरूप ठाकुर हरनामसिंह की चौपाल में गाँव के सवर्णों के पंच ने फैसला सुनाया है कि "न तो सुक्खा को खेत-क्यार में घुसने दिया जाए, न उसे किसी डौले-चकरोड़ से घास खोदने दी जाए और न उसे लाई-पताई या मजदूरी के लिए बुलाया जाए।...अब देखते हैं कैसे पढ़ाता है सुक्खा अपने बेटे को।" (जयप्रकाश कर्दम, 'छप्पर', राहुल प्रकाशन, दिल्ली, 1994, पृ. 38)। यहाँ स्पष्ट है कि धर्म के नाम पर तो उनका शोषण होता ही है लेकिन सवर्ण समाज आर्थिक रूप से भी उनका शोषण करता है।

आज 21वीं सदी में पहुँचकर भी समाज में बहुत बड़ा आर्थिक असंतुलन दिखाई पड़ता है। राजनीतिज्ञ पूँजीपति वर्ग से मिलकर अपने लोगों का ही आर्थिक शोषण कर रहे हैं, इसे भी अखिल नायक

ने 'भेद' उपन्यास के माध्यम से दिखाया है - "और ज्यादा दिन नहीं है, सेठ। हमारे पार्टी को शासन में आने दो। देखना, हम उस महार के संविधान को कचरे के डिब्बे में फेंक देंगे। ऐसा कानून बनाएँगे, आपकी मिल में कभी ताला नहीं लगेगा। ...धैर्य, समझे सेठ, सारे समस्या का समाधान संयम से ही संभव है। तुम ऐसे, ऐरे-गेरे की तरह धैर्य खो दोगे तो कैसे चलेगा? मुझे एक दिन का समय दीजिए। सोच-विचार कर चाल चलनी पड़ेगी। मुझे सोचने दीजिए।" (भेद, पृ. 53)।

'छप्पर' में वर्णित आर्थिक शोषण के बारे में जयप्रकाश कर्दम वर्णन करते हैं। चंदन जब शहर पढ़ने के लिए आता है तो उसके मन में एक कल्पना थी कि गाँव में दलितों का आर्थिक शोषण ठाकुर, साहूकार करते हैं। शहर में यह सब नहीं होता होगा, लेकिन उसकी कल्पना तुरंत ही बदल जाती है। जैसा कि वह कहता है कि "शहर आने पर उसे पता चला है कि शहरों में भी केवल थोड़े से लोग ही सुखी और संपन्न हैं, शेष लोग अभाव और उत्पीड़न का जीवन जीते हैं। आदमी को यहाँ भी पेट की क्षुधा से लड़ना पड़ता है, तन ढकने के लिए मशक्कत करनी पड़ती है। ...शहर में भी बहुत से दलित और दरिद्र लोग बना सब्जी खाते हैं या केवल पानी या चाय के साथ नमक की रोटियाँ गले से नीचे उतार कर जिंदा रहते हैं। यह एक विवशता, एक त्रासदी है उनके जीवन का, जिसे वह लोग नियति का आदेश मान बैठे हैं।" (छप्पर, पृ. 12-13)।

गाँव में तो उनका आर्थिक शोषण ठाकुर, साहूकार करते ही हैं, शहर में उनका आर्थिक शोषण कारखानों के मालिकों द्वारा किया जाता रहा है। दिन-रात कमरतोड़ मेहनत करके भी दो आदमी के लिए दो वक्त की रोटी मयस्सर नहीं हो पाती है। ऊपर से मालिक बीस-पच्चीस रुपये का काम करवा के छह-सात रुपए देता है। ज्यादा दिहाड़ी की बात करने से इससे भी हाथ धोना पड़ता है, इसलिए वह चुप रहते हैं। जैसा कि कथा से पता चलता है कि 'साले चले आते हैं नखरा दिखाने, लीडर बनते हैं हरामजादे। काम-धाम करेंगे नहीं और चाहेंगे कि फैक्ट्री इनके नाम हो जाए।' (वही, पृ. 13)। शहरी ढाँचे में भी अपना आत्मसम्मान खोता तथा आर्थिक शोषण को सहता मजदूर अपना जीवन जीने के लिए विवश है।

शिक्षा सबके लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे ही व्यक्ति में चेतना पैदा होती है। जिस प्रकार अंधकार को दूर करने के लिए उजाले की जरूरत होती है वैसे ही मनुष्य के अंदर छुपे अंधकार, विकारों को दूर करने के लिए शिक्षा जरूरी है। उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में फुले, अम्बेडकर जैसे चिंतकों ने शिक्षा को मुक्ति कहा है। 'छप्पर' में लेखक रजनी के माध्यम से यह निरूपित किया है कि शिक्षा हर किसी का संवैधानिक हक है और हर किसी को अपने अनुसार जीविका चुनने का अधिकार है। 'जब तक दूसरे लोग भी सुक्खा की तरह अपने बच्चों को काबिल बनाने की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक न देश का उत्थान होगा और न समाज का।' (वही, पृ. 71)।

वर्तमान में दलितों के समक्ष चुनौती शिक्षा संबंधी भी है। पहले दलितों को शिक्षा का अधिकार नहीं था, सदियों से लेकर आजतक सवर्ण समाज के वर्चस्ववादी मनोवृत्ति ने गरीब, दलित समुदाय के लोगों को शिक्षा से वंचित रखा है। उन्नीसवीं सदी में डॉ. अम्बेडकर के प्रयासों से संविधान के द्वारा शिक्षा को मौलिक अधिकार में शामिल किया गया और यह भी कहा गया कि शिक्षा हर किसी का जन्मसिद्ध अधिकार है। शिक्षा क्षेत्र में बढ़ते भेद-भाव के कारण आज भी कुछ दलित बच्चे शिक्षा से वंचित हैं। उनमें कुछ शिक्षा अर्जन कर भी लेते हैं तो उनको अनेक प्रताड़नाओं का शिकार होना पड़ता है। दलितों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण सवर्ण समाज उनकी शिक्षा पर कटाक्ष करता है, उन्हें नीचा दिखाने का प्रयास करता है। जैसा कि वाया वकील कहता है - "जो भी कहो सेठ, घर में थोड़ा खाने लायक हो जाने से डोम भी इस तरह दिखाते हैं वह कहा नहीं जा सकता! और दो अक्षर क्या सीख लिया मानो वेद उपनिषद उनकी मुँह जुबानी है! जो जहाँ रहना चाहिए वह वहाँ न रह कर ऊपर उठ गए तो वे और इंद्रचंद्र (भगवान) मानेंगे? ...दो वक्त का खाने को मिल गया और दो अक्षर क्या पढ़ लिया तो क्या तुम ब्राह्मण बन जाओगे?" (भेद, पृ. 52)। आगे वह ओड़िया कवि सूर्यबलदेव के एक गीत के जरिए कहते हैं - 'देहे मन्दाकिनी रज लगाई, ग्राम शूकरी की होइब गाई?...सात जन्म छोड़ कर सौ जन्म तपस्या करने पर भी क्या सूअर, गाय बन सकता है? त्रेता युग में तुम्हारी बिरादरी के शम्बूक को ब्राह्मण बनने की तपस्या करने के कारण उसकी हत्या की गई। स्वयं प्रभु रामचंद्र ने उसका धड़ और सिर अलग कर दिया था।'(भेद, पृ. 52)।

वाया वकील की तरह 'छप्पर' में ठाकुर हरनामसिंह दलितों के शिक्षा के विरोध में कहते हैं- "अकेले चंदन की पढ़ाई-लिखाई से हमें कोई एतराज नहीं है। वह पढ़-लिखकर कहीं नौकरी करे ले इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन चंदन की देखादेखी यदि सब चमार-चूहड़े पढ़-लिख जाएँ और सब-के-सब बाहर जाकर नौकरी करने लगेंगे, तो कल को हमारे खेतों और घरों में कौन काम करेगा?" (छप्पर)। इसका मतलब यह है कि सवर्ण कभी यह नहीं चाहते हैं कि उनकी कोई बराबरी करें। आगे वह अपनी बात के स्पष्टीकरण के लिए बेटी रजनी से कहते हैं - "प्रश्न औचित्य-अनौचित्य का नहीं। बल्कि अपनी अस्मिता का है। इतिहास और परंपरा से समाज में हमारा वर्चस्व रहा है। हमारा वर्चस्व कायम रहे हमारी अस्मिता इसी में है। अस्मिता के बिना मनुष्य जिन्दा नहीं रह सकता।" अन्य एक पात्र काणे पंडित कहता है - "तू कितना ही बड़ा हो जा सुक्खा, लेकिन धर्म-शास्त्रों से बड़ा नहीं हो सकता तू। अपमान करता है धर्म-शास्त्रों का, वेद-वेदांगों का और पूछता है क्या हुआ, नास्तिक...।" (छप्पर, पृ. 72-73)

दलित धार्मिक कहे जाने वाले ग्रंथों का बहिष्कार करते आए हैं। वे 'मनुस्मृति' का भी विरोध करते हैं क्योंकि ये ग्रंथ ही उनके शोषण का प्रमुख कारक तत्व हैं। इसलिए इन उपन्यासों में दलितों का आक्रोश भी उपस्थित है। 'भेद' उपन्यास की एक पात्र मास्टराणी कहती हैं- "कौन से शास्त्र में लिखा है कि डोम जाति के लोग मंदिर नहीं जा सकते? वह शास्त्र तुमने लिखा या तुम्हारे बाप-दादाओं ने या तुम्हारे चौदह

पुरखों ने। जले मुँह तेरा, शास्त्र का रौब दिखाता है। हम क्या शास्त्र नहीं पढ़े हैं! बड़े ठाकुर जगन्नाथ चंडालनी की निंदा करने के कारण बाहर घरों में भिक्षा माँगे थे। यह क्या शास्त्र में नहीं लिखा है?" (भेद, पृ. 35)।

दलितों के हाथ का पानी तो सवर्ण लोग नहीं पीना चाहते। लेकिन दलित महिलाओं का उपभोग करने को अपना जागीर समझते हैं। इस तरह की मानसिकता रखने वाले सवर्ण पुरुषों का एक वर्ग कमला जैसी युवतियाँ को अपनी वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझता है, उसके साथ बलात्कार किया जाता है। इनकी नजर में दलित स्त्रियों का जैसे कोई मान-सम्मान या इज्जत नहीं होती। जब चाहे तब उसे मसल दो। कमला कह रही थी कि 'मेरा दोष यही था कि मेरा रंग दूसरी लड़कियों से थोड़ा साफ था और मेरे नाक-नक्श दूसरी लड़कियों से थोड़े अच्छे थे।...काश मैं बदसूरत होती तो कम से कम मेरा जीवन तो बर्बाद नहीं होता।' (भेद, पृ. 65)। कमला की इस बात से यह ध्वनित होता है कि दलितों का सुंदर होना भी उनके लिए अभिशाप ही है!

अखिल नायक और जयप्रकाश कर्दम भली-भाँति जानते हैं कि अकेले शिक्षा से मदद नहीं मिलेगी, इसलिए वह शिक्षा के साथ-साथ राजनीति का मिश्रण करते हैं। जैसा कि हम कथा के आरंभ से जानते हैं कि ललटू पढ़ाई बीच में ही छोड़ देता है। वह शिक्षा एक निश्चित प्रकार की शिक्षा है जो शायद सरकारी नौकरी या प्रमाण पत्र देगी। शिक्षा के महत्व को व्यावहारिक रूप से समझाते हुए ललटू समाज में हो रहे उत्पीड़न और प्राकृतिक संसाधन के लूट के खिलाफ लामबंद होता है। संगठित होके अपने अन्य साथियों के साथ संघर्ष करता है। गाँव में स्थापित जातीय श्रेष्ठताबोध और अहंकार के खिलाफ तार्किक तरीके से लड़ाई लड़ता है। उसी तरह चंदन कहता है, 'हम व्यवस्था के विरोधी हैं, व्यक्ति के नहीं। हमारी लड़ाई व्यवस्था के खिलाफ है, किसी व्यक्ति से कोई द्वेष नहीं हमें। यदि कोई व्यक्ति इसमें बाधक होगा तो उसका विरोध अवश्य किया जाएगा, फिर वह चाहे कोई भी हो।' (छप्पर, पृ. 118)। इसलिए उन्होंने अम्बेड़कर की तरह राजनीतिक सक्रियता और शिक्षा का मेल कराया है। शिक्षा जागरूकता और चेतना का निर्माण करती है। इसलिए शिक्षा महत्वपूर्ण है।

धर्म का हमारे समाज में असमानता फ़ैलाने में उतना ही बड़ा हाथ है जितना वर्ण-व्यवस्था का। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक लगते हैं। 'छप्पर' और 'भेद' उपन्यासों में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। चंदन गाँव वालों को समझाता हुआ कहता है कि 'यदि समाज हमें समानता का दर्जा नहीं देता, वह हमें हमारे मनुष्यत्व के साथ स्वीकार नहीं करता, यह समाज का दोष है। समाज धर्म द्वारा प्रेरित और संचालित है, हमारी सामाजिक स्थिति धार्मिक आदेशों का ही परिणाम है। धर्म-ग्रंथ ही हमारे शोषण और अत्याचार की जड़ें हैं।' (वही, पृ. 45)।

सवर्ण व्यक्ति यह सहन नहीं कर सकता कि दलित उनका बराबरी करें। पुलिस अधीक्षक के उत्तर से साफ ध्वनित होता है, जैसे- 'हाँ, कुछ सिरफिरे लोग अराजकता फैलाना चाहते हैं समानता के नाम पर। वे ही जगह-जगह आंदोलन कर रहे हैं।'...'थोड़ा सा जोश है बस, शासन से क्या टक्कर लेंगे वे। धर-पकड़ शुरू कर दी है हमने। थोड़े दिन में सबके होश ठिकाने आ जाएँगे,' पुलिस अधीक्षक ने लापरवाही के स्वर में जवाब दिया।' (वही, पृ. 87)। उसी तरह 'भेद' में अखिल नायक दिखाते हैं कि संतोष पंडा शुरू में ललटू का समर्थन करते हैं क्योंकि वह एक भ्रष्ट सरकारी अधिकारी परमानंद बाग को अपने गाँव के असहाय व्यक्ति को सरकारी भत्ता दिए जाने वाला पैसा काट लेने के कारण पसंद नहीं करते। 'मंदिर में गाय की हड्डी फेंकने को लेकर धार्मिक-संघर्ष : संवाददाता समेत पंद्रह गिरफ्तार।' (भेद, पृ. 88)। मीडिया की जनप्रतिबद्धता संदेह के दायरे में है।

डॉ. भीम राव अम्बेडकर जाति आधारित सामाजिक व्यवस्था को बरकरार रखने की बात नहीं करते, बल्कि 'जाति उन्मूलन' की बात करते हैं। इसलिए उन्होंने अंतर्जातीय विवाह और सामूहिक-भोज को प्रस्तावित किया था। रजनी चंदन से कहती है, "कमला के बच्चे को भी अपने साथ ले चले हम। पिता का प्यार तुम देना, माँ का प्यार मैं दूँगी उसे। अनाथ नहीं रहेगा वह।" (छप्पर, पृ. 128)। इस उपन्यास में ठाकुर हरनाम सिंह का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है। उसके साथ चंदन और रजनी का अंतर्जातीय विवाह करवाकर समता, स्वतंत्रता और बंधुता मूलक समाज की परिकल्पना भी करते हैं'। उन्होंने फुले, अम्बेडकर, गांधी और मार्क्स के चिंतन को भी दिखाने का प्रयास किया है। 'भेद' उपन्यास में एक दलित युवक का त्रासद-पक्ष उद्घाटित हुआ है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के दौर में ओड़िया और हिंदी समाज में सिर्फ दलितों के समक्ष नई चुनौतियाँ नहीं आ रही हैं, बल्कि देश में हर जाति के दलितों के मध्य जातिगत भेद-भाव तथा जातीय हिंसा जैसी समस्या और एकता की कमी इस समय की सबसे बड़ी चुनौती है। जब तक यह ऊँच-नीच की दीवारें रहेंगी तब तक भारत एक सुदृढ़ राष्ट्र नहीं कहला सकेगा। दलितों के समक्ष समस्याएँ पहले भी थीं लेकिन शोषण के पैमाने बदले हैं। इन पैमानों को उपन्यासकार अपने उपन्यासों का कथ्य बनाते हैं। विविध विरोधी सोचों के मध्य संघर्ष और समन्वय के सूत्रों की वकालत करते हैं और आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, धार्मिक, राजनीतिक परिदृश्य की बहुलता को सामने लाकर नागरिक अधिकारों का नया संदर्भ उपस्थित करते हैं।

एम.फिल. शोधार्थी, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, साउथ कैंपस, रूम -229, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद - 500046